RESUME

Dr. UMESH KUMAR

Cont. No: 9910765508

E-mail: umeshk331@gmail.com

Permanent Address
House No A-412, Sector 19, Noida-201301

Career Objective: To seek a dynamic and challenging position in the Yoga skills, contributing significantly to the growth of organization I work for.

Specialization:
Yoga **(Asana, Pranayama, Mudra-Bandha, Meditation, Yoga-Nidra),** Ayurveda**,** Naturopathy**,** Acupressure**,** Pranic Healing Therapy**,** Yajya Therapy**,** Marma Therapy and Swar Yog Therapy etc.

Academic Qualifications:

Course	University/Board	Year	Division	Percentage
Purva Madhyama (10^{th})	M.D.U Rohtak	2003	1st	60.25%
Uttar Madhyama (12^{th})	M.D.U Rohtak	2005	2nd	52.66%
Shastri (Graduation)	M.D.U Rohtak	2008	2nd	53.12%
P.G. Dip. in Yoga Science	G.K.V. Haridwar	2009	1st	64.75%
B Ed	RSS, New Delhi	2011	1st	66.40%
M.A. in Yoga Science	U.O.U Nainital (Uttarakhand)	2013	1st	66.75%
B P Ed	Kurukshetra University	2015	1st	65.88%
Acharya Darshan	Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi	2017	1st	63.88%
UGC-NET	UGC	2013	Qualified, Subject Sanskrit	-
Ph.D. in Yoga Science	H.G.U, Pauri Garhwal (Uttarakhand)	2022	**TOPIC-** योग के संदर्भित ग्रन्थो में ज्ञानयोगमीमांसा– "(महर्षि दयानन्द सरस्वती के मंतव्यों के संदर्भ में)	

Awards and Recognitions:

- UGC NET-2013 Qualified
- DNYS-211 Qualified
- QCI Certified Yoga Professional

Extra skill:

Knowledge of Computer (Basic, Microsoft Word, Microsoft Excel, Microsoft Power Point).

Experience:

- Currently working in Spiritual Yoga Alliance.
- One Year Experience in Holistic healthcare foundation society (the Yoga Guru)

Paper Presentation (National and International):

- Presented a Paper entitled **"योग के संदर्भित ग्रन्थों में वर्णित ज्ञानयोग मीमांसा तथा कैवल्य में उसकी उपयोगिता" in** National Conference on **"Yoga and It's Potential to Heal the Planet"** organized by **ADITI MAHAVIDYALA (University of Delhi) on** 28th - 29th January 2020.
- Presented a Paper entitled **"ज्ञानयोग मीमांसा"** in a International Conference on **"YOGA FOR ALL"** organized by Navyoga Suryodaya Sewa Samiti Rishikesh Uttarakhand on 6th March 2020.
- Publish a Paper entitled "**रामायण में ज्ञान का वर्णन**" in an **INTERNATIONAL JOURNEL of RESEARCH and ANALYTICAL REVIEW (IJRAR)** Volume – 5 Issue-3, Date of Publication: September 2018 E-ISSN 2348-1269, P-ISSN 2349-5138 Web. – www.ijrar.org. (Paper ID: IJRAR19D1399)
- Publish a Paper entitled "दर्शन शास्त्र के स्तम्भत्रय (ज्ञानयोग तथा ज्ञानोपलब्धि के विशेष सन्दर्भ में) in a **DRISTIKON, India is leading multidisciplinary referred Hindi language journal, UGC CARE** LISTED, published in Vol. 12 Issues 6 in Nov- Dec 2020, **Impact Factor 5.051**, ISSN 0975-119X Web.- www. Ugc-care-drishtikon.com
- Published a paper entitled औपनिषद परम्परा में ब्रह्म का स्वरुप तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में उपमान प्रमाण की उपादेयता (महर्षि दयानन्द सरस्वती के विशेष सन्दर्भ में) in **DRISTIKON, India's leading multidisciplinary referred Hindi language journal, UGC CARE** LISTED, published in Vol. 13 Issues 1 in Jan- Feb 2021, **Impact Factor 5.051**, ISSN 0975-119X Web.- www. Ugc-care-drishtikon.com
- Publish a Paper entitled ("यौगिक परम्परा में योगी स्वात्माराम") in **DRISTIKON, India's leading multidisciplinary referred Hindi language journal, UGC CARE** LISTED, published in Vol. 13 Issues 2 in Mar- Apr 2021, **Impact Factor 5.051**, ISSN 0975-119X Web.- www. Ugc-care-drishtikon.com

Workshop & Conference.

- National yoga week under the Morarji Desai national institute of yoga on 12-18 February 2010.
- Attended the national conference on naturopathy& yoga under the ministry of Aayush on **5-9 March 2010**

Achievements:

• Secured **1st place** in **Wrestling Championship** held at Yamuna Nagar, **Haryana in 2002-03.**
• Secured **1st place** in **Haryana state yoga championship 2007.**
• Participated in **National Yoga Asana Championship** held at **Faridabad in 2006.**
• Participated in **Haryana state yoga championship 2007-2008. .**
• Participated in **All India University in cross country 2009.**
• Participated in **North Zone University Kabaddi 2010.**

Strengths:

• Honesty & Determination.
• Believe in Hard Work and Self-Motivation.
• Good Communication skill in Hindi and English.
• Patience and Ability to take good Decisions.
• Always try to have Positive Attitude even in Unfavorable conditions.

Personal Profile:

Father's Name	-	**Shri Rajender Prasad**
Mother's Name	-	**Smt. Kamlesh devi**
Date of Birth	-	**24/12/1987**
Marital Status	-	Married
Language Known	-	Hindi, English & Sanskrit
Nationality	-	Indian
Religion	-	Hindu

औपनिषद परम्परा में ब्रह्म का स्वरूप तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में उपमान प्रमाण की उपादेयता (महर्षि दयानन्द सरस्वती के विशेष सन्दर्भ में)

उमेश कुमार

शोधछात्र, योग विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

डॉ० अरुण कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

सांख्य के अनुसार भी प्रकृति से महत, महत् से अहंकार, अहंकार से ग्यारह इन्द्रियां और पंच तन्मात्रा आघ्ैर पंचतन्मात्राओं से पंच महाभूतों पंचतत्वोंद्ध का अविर्भाव हुआ, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् बना। पंचतन्मात्राएं पंचभूतों के ही सूक्ष्म रूप हैं।[1] ऊपरी दृष्टि से यदि देखें तो आकाश का विषय शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस और पृथिवी का गन्ध है, किन्तु यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करें तो प्रत्येक तत्व में अन्य तत्व और उनकी तन्मात्राएं समाहित होती हैं। यथा आकाश की तन्मात्रा शब्द है इसमें शब्द तन्मात्रा की आधिक्य है। अतः इसका गुण भी शब्द है। वायु में शब्द और स्पर्श तन्मात्रा का आधिक्य होने से उसके गुण शब्द, स्पर्श है। तेज अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप तन्मात्राओं की अधिकता है, इसलिए इसके गुण भी ये ही हैं। जल (vi) तत्व में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तन्मात्राएं अधिक हैं अतः वे ही इसके गुण है तथा पृथ्वी तत्व में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध तन्मात्राओं की अधिकता होने से ये सभी पृथ्वी के गुण हैं। इसी प्रकार सभी तत्व मिलने पर यह स्थूल शरीर या जगत् निर्मित होता है।

इसके अतिरिक्त त्रिशिखि. उपनिषद् में कहा कि ''समस्त भूत इसी प्रकार एक दूसरे का आश्रय प्राप्त करके आपस में मिले हुए हैं। यह भूमि भी पंच तत्वों से युक्त चेतनामय है।[2]

इसीलिए इस पृथ्वी से औषधि, अन्न चारों प्रकार के पिण्ड (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जरायुज), रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि वीर्य आदि सप्त धातुओं की उत्पत्ति होती है।[3] और धातुओं के योग से ही कई भूत पिण्डों की उत्पत्ति सम्भव हो जाती है।[4]

वेदों और उपनिषदों में अध्यात्मविद्या का प्रमुखतम आद्यतत्व ब्रह्म है। यही सबका मूल कारण और प्ररिता माना गया है। 'ब्रह्म' शब्द 'वृह' धातु से निष्पन्न है। आचार्य शंकर भी इसे 'वृह' धातु से ही निष्पन्न मानते हैं तथा नित्य शुद्ध मानते हैं।[5] रत्न प्रभा टीका के अनुसार ब्रह्म शब्द 'बृहि वृद्धौ' धातु से व्युत्पन्न हुआ है।[6] बुद्धि का कारण और 'वृहत' होने से भी आत्मा को ब्रह्म कह दिया जाता हैं।[7] शब्द कल्प द्रुम के अनुसार भी ब्रह्म शब्द निरतिशय महत्व अर्थ में 'वृद्धि' धातु से निष्पन्न माना गया है।[8] महर्षि दयानन्द सरस्वती का विचार है कि सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ाता है इसलिए परमेश्वर का नाम ब्रह्म है और सबसे बड़ा होने के कारण भी ब्रह्म है।[9]

इस प्रकार ब्रह्म शब्द का अर्थ महान् या विशाल, वृहत् कहा जा सकता है। 'अहम' से 'ब्रह्म' की विशालता प्राप्त करना ही 'अहं ब्रह्मास्मि' से जैसे पदों की सार्थकता है। वैसे ब्रह्म शब्द के अनेक नामार्थ दृष्टि में आते हैं, यथा भूमा, विशाल, समृद्ध तथा सर्वश्रेष्ठ ;ये सभी ब्रह्म की व्याख्या में सार्थक हैं। इसी को परमात्मा, ईश्वर, परमेष्ठी, परमेश्वर, वासुदेव, कृष्ण, हरि, विष्णु आदि नामों से भी व्यवहार में लाया जाता है। सभी दार्शनिक विद्वान् इस; ब्रह्म तत्व को एक मत से स्वीकारते हैं, तथा वही तत्व सबका आधार है। इसी के अनुशासन में समस्त जड़-जंगम सृष्टि अपने-अपने व्यापार में व्यापत रहती है। ऐसे उस शक्तिमान ब्रह्म के विषय में या उसके स्वरूप कि विषय में वेदों, उपनिषदों आदि में क्या है उस पर विचार अपेक्षित है।

वेदों में कहा गया कि वह ब्रह्म अद्वितीय, जगत् कर्ता, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है। वह सभी भुवनों का एक तथा समस्त विश्व का एक स्वामी है।[10] उस परम सत्ता को परम पुरुष सृष्टि का अध्यक्ष, देवों का देव तथा ब्रह्म आदि नामों से कहा जाता है।[11] वह ब्रह्म सूक्ष्माति सूक्ष्म है, इसलिए जब जिज्ञासु उसका साक्षात्कार कर लेता है तो मानों वह समस्त भुवनों का साक्षात्कार कर लेता है।[12] विद्वत् जन उसी ब्रह्म की स्तुतियां व भक्ति करते हैं।[13] उसी एक परमेश्वर को अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, ब्रह्म और प्रजापति आदि नामों से पुकारा जाता है।[14] वह ब्रह्म शरीर रहित, शुद्ध, नस-नाड़ियों से रहित, पापों से रहित, कवि, मनीषी, परिभू और स्वयम्भू आदि विशेषणों से युक्त है।[15] संसार में जो भी कुछ है उसमें वही सर्वत्रा व्याप्त है अतः इन सांसारिक वस्तुओं का उपभोग त्यागपूर्वक करना चाहिए।[16] उस व्यापनशील परमात्मा के अत्यन्त आनन्द स्वरूप प्राप्तव्य मोक्ष पद को योगीजन सदैव सर्वत्रा व्याप्त देखा करते हैं। जैसे कि स्वच्छ आकाश

में देदीप्यमान सूर्य के प्रकाश में नेत्रा की दृष्टि व्याप्त होती हैं। इसी प्रकार ब्रह्म पद भरी स्वंय प्रकाश स्वरूप सर्वत्रा व्याप्त हो रहा है।[17] उस ब्रह्म का मुख्य नाम 'ओ3म' है, वह आकाश की तरह व्यापक हो रहा है।[18] अथर्ववेद में पिण्ड व ब्रह्माण्ड का एक ही रूप बताते हुए कहा कि-''जो पुरुष में अर्थात् मनुष्य के शरीर में ब्रह्म देखते हैं, वे परमेष्ठी को भी जान सकते हैं।[19] अर्थात् मनुष्य के शरीर में जो आत्मा, ब्रह्म अथवा इन्द्र का साक्षात्कार करते हैं वे समष्टि जगत् में परमात्मा, परब्रह्म किंवा महेन्द्र को जान सकते हैं, क्योंकि पिण्ड व ब्रह्मण्ड का एक ही नियम है। ऋग्वेद आदि के प्रमाणों से सिद्ध है कि वही ब्रह्माण्ड का रचयिताप है जिसने पूर्व सर्ग के समान सूर्य और चन्द्र लोक को बनाया, द्युलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष एवं अन्य सुखमय लोक निर्मित किए।[20] वही समस्त ब्रह्माण्ड का एकमात्र पति है जो चराचर जगत् से पूर्ण विद्यमान था।[21] सामवेद उसे 'इन्द्र' शब्द से अभिहित करता है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का शासक एवं समस्त विश्व में विकासमान है।[22] अथर्ववेद में ब्रह्म को ज्येष्ठ कहा, वही भूत भविष्यादि सबका अधिष्ठाता है जिसका केवल सुख एवं आनंद ही स्वरूप है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिए नमन् हो।[23] जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का आधार ब्रह्म ही है।[24] ऋग्वेद में ब्रह्म के विराट रूप का वर्णन कुछ इस प्रकार हुआ है-जिसकी सर्वत्रा आंखें हैं जिसके सर्वत्रा मुख है, जिसके बाहु सर्वत्रा कार्य कर रहे हैं, वह कर्मों के अनुसार जीवों को गति प्रदान करता है, उसीने द्यौ और पृथ्वी लोक को उत्पन्न किया है।[25] यजुर्वेद कहता है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उस ब्रह्म के एक अंश में अवस्थित है।[26] इस प्रकार वेदों में ब्रह्म के अद्वितीय जगत्कर्ता, सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान् रूप का वर्णन किया गया है। वहां कहा कि उसका आश्रय ही मोक्ष दायक तथा न मानना अर्थात् उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना, भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है।

वेदों के समान उपनिषदों में भी उस परब्रह्म परमात्मा का वर्णन बड़े व्यापक रूप से हुआ है। लक्ष्य सभी का उस तत्व की प्राप्ति कर आत्मोद्धार करना है।

उपनिषद् साहित्य में ब्रह्मतत्व के विषय में सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरूपण किया गया है। उपनिषदें वस्तुत प्राचीन ऋषियों की अनुभूति की प्रयोगशालाएं हैं। जहां उन्होंने मिल-बैठकर ब्रह्म और आत्मा पर व्यापक गवेषणा कर, विचारों को अभिव्यक्ति दी है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है कि-''वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत् भी पूर्ण है, पूर्ण ब्रह्म से यह पूर्ण जगत् उदित होता है। इस पूर्ण जगत् की पूर्णता को लेकर पूर्ण ब्रह्म ही प्रलय काल में शेष रह जाता है। वह पूर्ण ब्रह्म 'ओ3म' नाम वाला आकाशवत् व्यापक और सनातन है।[27] वह काल से भी अतीत भूत और भविष्यत् का स्वामी है, जो उसे जान लेता है पिफर उससे मुंह नहीं मोड़ता।[28] वह ज्योतियों का ज्योति है, दिनों के साथ संवत्सर वर्ष उसके पीछे घूमते हैं। वह आयुदाता और अमर है।[29] जिसमें पांच महाभूत और ब्रह्माण्ड, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद तथा आकाश प्रतिष्ठित है। उसी परमात्मा को जानते हुए मैं महान् होने से ब्रह्म और अमर होते हुए अमर मानता हूं।[30] वह ब्रह्म इन्द्रियातीत अर्थात् इन्द्रियों से भी परे है। जो उस ब्रह्म को प्राणों का प्राण, चक्षु का चक्षु, श्रोत का श्रोत तथा मन का मन जानते हैं, वे उसे सनातन, सबसे पहला और ब्रह्म जानते हैं।[31] वह ब्रह्म तो सचमुच अद्वितीय है, उसके जैसा कौन है? वह तो मन की वस्तु है, आंख की नहीं। जो अज्ञान के वशीभूत हो, उसमें नानात्व देखता है, एक से अधिक कल्पना करता है वह सदैव मृत्यु के बंधन में बंध ा रहता है।[32] वह वाणी से भी प्राप्तव्य नहीं है। वह परमात्मा तो अजर, अमर, अविनाशी और अभय है। ब्रह्म अभय है। जो ऐसा जानता है, वह भी ब्रह्म हो जाता है अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त कर अभय हो जाता है।[33] वह ब्रह्म पृथ्वी के अन्दर है, वह उसका नियामक है, वह अन्तर्यामी एवं अमृत है। वह समस्त भूतों से विद्यमान है। जिसको प्राणी पास रहते हुए भी देख नहीं पाते, भूले हुए हैं। वस्तुतः वह ब्रह्म प्राण, वाणी, चक्षु, श्रोत, मन, त्वचा, विज्ञान और वीर्य (बीज) में रहता हुआ वीर्य के भीतर है। वह अदृष्ट, दृष्ट है, अश्रुत श्रोता है, अमत मन्ता है, अविज्ञात ज्ञाता है। परमात्मा अन्तर्यामी अमर है। इससे अलग सब दुःख ही दुःख है।[34] ब्रह्मवादिनी गार्गी के प्रश्न का उत्तर देते हुए याज्ञवल्क्य कहते है-वह ब्रह्म देशकाल से अतीत हैं। वह न स्थूल है। न अणु है, न स्रिंव है, न दीर्घ हैं। न लाल है, न चिकना है, न छाया है, न तम है, न वायु है, न आकाश है। न असङ्ग है। वह रस रहित व गन्ध विहीन है। वह आंख व कान रहित है। वह वाणी और मन से रहित है। तेज, प्राण, मुख, मात्रादि से विहीन है। उसके भीतर कुछ नहीं है और न बाहर कुछ है। वह अविनाशी ब्रह्म न कुछ खाता है और न ही उसे कोई खा सकता है।[35]

तैत्तिरीय उपनिषद् में उस ब्रह्म की सत्ता का प्रतिपादन कुछ प्रकार हुआ है कि वरुण के पुत्र भृगु अपने पिता के पास जाकर बोले कि -''हे भगवन्! मुझे ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा दो।''[36] भृगु ऋषि को उनके पिता ने उत्तर दिया-''जिससे यह सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न हुए प्राणी जीते हैं, जिसमें जाते हुए प्रलय को प्राप्त होते हैं, उसे विशेष रूप से जानों, वह ब्रह्म परमात्मा है।[37] सारांशतः जो जगत् का कर्ता, धर्ता, संहर्ता है वही पर ब्रह्म है। ब्रह्मनन्द वल्ली के प्रथम अनुवाक में कहा कि-''ब्रह्म, सत्य है, ज्ञान है, अनन्त है। वह हृदय की गुहा में छिपा हुआ है। परन्तु साथ ही परम व्योम में, अन्तरिक्ष मण्डल में वही स्पष्ट दिख रहा है। उसे जो जान लेता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्म का साथी हो जाता है, और साथी होने के कारण जैसे ब्रह्म के लिए कोई कामना अपूर्ण नहीं रह जाती, सब प्रकार से वह तृप्त होता है, वैसे ब्रह्म का साथी होने के कारण उसके लिए भी कोई कामना अपूर्ण नहीं रह जाती, वह सब प्रकार से तृप्त हो जाता है।[38] तैत्तिरीय उपनिषद् का ऋषि कहता है-उसी ब्रह्म से आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियां, औषिधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष। यह शरीर, अन्न तथा अन्न से रस के अतिरिक्त क्या है?[39] उपर्युक्त से ज्ञात होता है कि सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ। यही नहीं अन्यत्रा कहा कि-''ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला किसी से भी भयभीत नहीं होता।[40] क्योंकि जब वह अगोचर, अशरीर, अनिर्वचनीय, अनाधार-जगदीश्वर के अन्तर्गत अभय रूप प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है, तो वह भयभीत नहीं होता। भयरहित हो जाता है।[41] वह जगदीश्वर सचमुच आनन्दमय रस से परिपूरित रस सिंधु है। ऐसे रस रूप परमात्मा को पाकर यह चेतन; जीवात्माद्ध आनन्द वाला हो जाता है।[42]

इसी प्रकार छान्दोगयोपनिषद् में सनत्कुमार जी ने नारद को भूमा विद्या का उपदेश दिया। भूमा क्या है? अर्थात् ब्रह्म विद्या, परमात्म विद्या, का उपदेश देते हुए सनत्कुमार कहते हैं-''जहां पर दूसरा दिखे नहीं, दूसरा श्रवण में न आवे, दूसरे का ज्ञान न हो, उसका नाम भूमा है और जो भूमा है वही अमृत है।[43] इसके विपरीत जहां पर दूसरे का दर्शन का दर्शन, श्रवण, विज्ञान है, वह अल्प है, जो अल्प है वह मर्त्य है अर्थात् विकारी विनश्वर है।[44] इस प्रकार यह बताया

गया कि जगदाधार परमात्मा सबसे बड़ा है और उसी में सुख का निवास है क्योंकि वही अमृत रूप है वह महतो महीयान है। उसे पाकर जीवात्मा परमानन्द का अनुभव करता है। इसी प्रकार छान्दोगय के आठवें अध्याय में दहरविद्या का निरूपण करते हुए परमात्मा के अनेक गुणों का उल्लेख किया गया है। नाम रूपों को धारण करने वाला ब्रह्म है।[45] यह सब चराचर रूप ब्रह्म ही है।[46] प्राचीन उपनिषदों में ब्रह्म के निर्गुण ईशोपनिषद् स्वरूप और निर्गुण साकार स्वरूप का विवेचन हुआ है। ईशोपनिषद् में प्रथम बार ब्रह्म के लिए 'ईश' शब्द का प्रयोग हुआ है।

ईशोपनिषद् कहती है उस पर ब्रह्म परमात्मा (ईश्वर) का जो कुछ भी यहां है उसमें उसका निवास हैं। अर्थात् वह सर्वव्यापक हैं। स्वंय गति नहीं करता पर सबको गति में लाता है, वह दूर से दूर और पास से पास हैं। वह सर्वव्यापक होने से सबमें व्याप्त होता हुआ, सबसे परे भी है।[47]

मुण्डकोपनिषद् में कहा कि वह प्रकाश स्वरूप है, अणु से अणु है, उसी में सब लोक-लोकान्तर और प्राणी स्थित हैं, यह अक्षर ब्रह्म है, प्राणों का प्राण व मनों का मन है और वाणियों की वाणी हैं। यह सत्य स्वरूप है अमर है यही ज्ञातवय है।[48] वह परब्रह्म निर्मल, पवित्रा, उज्जवल ज्योतियों की ज्योति है, उसे आत्मज्ञानी लोग प्राप्त होते हैं।[49] वह परमात्मा तेज स्वरूप, सबका कर्ता सबका स्वामी है।[50] उस ईश्वर का कोई गोत्रा, जाति, वर्ण नहीं है। उसके आंख कान नहीं है, उसके हाथ-पैर नहीं है, वह नित्य है, विभु है, सर्वव्यापक है, अत्यन्त सूक्ष्म है, वह अविनाशी है, वह संसार का उत्पादक है, उसे धीरे लोग देखते हैं।[51] जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक परमात्मा है जिसका ज्ञानमय तप है उस ब्रह्म से यह नाम, रूप अन्न से वस्तुएं पैदा होती है।[52] वही अमृतमय ब्रह्म सामने है, वही ब्रह्म पीछे दाहिने बायें, नीचे, ऊपर सर्वत्रा फैल रहा है, वही सबसे श्रेष्ठ है।[53] जो उस अविनाशी ब्रह्म को जानता है, वह उसे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक देखता है।[54]

कठोपनिषद् में उस ब्रह्म के लिए कहा कि-''वह अशरीरी है और सब शरीरों में व्यापक है। वह अस्थिरों में स्थिर है, वह महान् और विभु है।[55] वह नित्य पदार्थों से भी नित्य है, चेतनों का चेतन है, एक है, सबको बनाने वाला वही है।[56] केन उपनिषद् उसके लिए कहती है कि 'वह श्रोत्रा का श्रोत्रा, मन का मन, वाणियों की वाणी, प्राणों का प्राण, चक्षुओं का चक्षु हैं। ऐसे सबके आदि स्त्रोत परमात्मा को धीर लोग मरने के बाद प्राप्त करके अमर हो जाते हैं।[57]

जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में 'ओ3म्' शब्द के द्वारा ब्रह्म का विस्तार से निरूपण किया गया है-वह ब्रह्म ही कर्णों का कर्ण, मनों का मन, वाणी का वाणी, प्राणों का प्राण, चक्षुओं का चक्षु है। धीर योगीजन इस लोक से प्रयाण करके जिसको प्राप्त होकर अमृत हो जाते हैं।

मुण्डक उपनिषद् तो ब्रह्म को ही प्रमुख लक्ष्य बताते हुए कहती है-''ब्रह्म का वाचक प्रणव ही मानो धनुष है, यहां जीवात्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसके लक्ष्य हैं।[58] इसी प्रकार यह आत्मा ब्रह्म है[59] तथा 'मैं ब्रह्म हूं'[60] इत्यादि कहा गया है, इसका तात्पर्य यही है कि जो ब्रह्माण्ड में व्यापक है, वह पिण्ड में भी है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् इस सृष्टि का आलोक प्रदाता व नियन्ता तथा विश्व ब्रह्माण्ड में संव्याप्त ब्रह्म को ही मानती है। इस सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्म से ही है।[61] वही नित्य, शुद्ध, निरन्जन, विभु, अद्वय एवं आनन्द स्वरूप शिव ब्रह्म अपने एक ही दिव्य लोक से सबको प्रकाशित कर रहा है।[62]

श्वेताश्वतर उपनिषद् में उस विराट् ब्रह्म का कुछ इस प्रकार वर्णन है कि उस ब्रह्म के पाणि पाद सर्वत्रा हैं, चक्षु, मस्तक तथा मुख भी सर्वत्रा हैं। वह सबको व्याप्त कर स्थित है।[63] अन्यत्रा कहा कि '' जो ब्रह्म सबके सर्वोत्तम आश्रय हैं उन्ही में समस्त विश्व स्थित है। वे ही सबके प्रेरक और नाश न होने वाले परम अक्षर हैं। जिन ऋषियों ने ध्यान योग से ब्रह्म की दिव्य शक्ति का दर्शन किया था वे अपने हृदय में अन्तर्यामी रूप से अपने हृदय में ब्रह्म को विराजमान समझकर, उन्हीं के परायण होकर उन्हीं में लीन हो गए, सदा के लिए मुक्त हो गए।[64] आगे कहा कि ब्रह्म में भोत्तफा, भोग्य और नियन्ता तीनों प्रतिष्ठित हैं। यह अक्षर, विकार युत्तफ विश्व प्रपण्च का आश्रय होने पर भी अविकारी हैं। अविनाशी है।[65] वेदों और उपनिषदों के ब्रह्म सम्बन्धी विवेचन के पश्चात् अनेक दार्शनिकों की दृष्टि में ब्रह्म का क्या स्वरूप है, इस पर विचार करते हैं।

महर्षि दयानन्द के अनुसार ब्रह्म और ईश्वर पर्यायवाची शब्द हैं वे ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, नित्य, सर्वव्यापक आदि मानते हैं। ईश्वर सगुण और निर्गुण दोनों ही है।[66] स्वामी जी के मतानुसार ईश्वर का स्वरूप इस प्रकार है-ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, अनादि, निर्विकार, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्रा और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करने योग्य है।[67]

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ब्रह्म या परमात्मा के स्वरूप को इस प्रकार कहते हैं-'परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है, पर स्वेच्छाचारी नहीं। विधि-विधान के अन्तर्गत रहकर वह अपना कार्य करता है। परमेश्वर को ब्रह्म एवं परमात्मा भी कहा जाता है। वह नित्य शुद्ध ब्रह्म-मुक्त स्वभाव है वह निरवयव है, अपरिणामी है। सृष्टि रचना में परमेश्वर निमित्त कारण है।[68] ब्रह्म ;परमेश्वर जगत् के रूप में परिणत नहीं होता। अपितु जड़ प्रकृति के सहयोग से नामरूपात्मक जगत् का निर्माण करता है वह जगत् का निमित्त कारण है। जीवों को पाप-पुण्य का फल देने तथा मोक्ष प्राप्ति कराने के लिए ईश्वर सृष्टि की रचना करता है।[69]

जहां वेदान्त दर्शन में संसार को ब्रह्म का विवर्त कहा गया है, अर्थात् रज्जु में सर्प की भांति मोहिनी माया के प्रताप से ब्रह्म में ही जगत् की भ्रान्ति हो रही है, वास्तव में यह दृश्यमान् जगत् ब्रह्म ही है।

इस प्रकार वेदान्त दर्शन में सब कुछ ब्रह्म की कह दिया गया है। अद्वैत में केवल एक ब्रह्म की ही सत्ता है।

वहां महर्षि पातंजल का योगदर्शन पुरुष विशेष ईश्वर को ही ब्रह्म या ईश्वर के रूप में उल्लेखित करता है। महर्षि के ईश्वर का मुख्य नाम 'प्रणव' है। जिसका जप व उपासना करने से सब कालुष्य दूर हो जाते हैं। वह क्लेश, कर्म, विपाक, आशय आदि से असम्पृक्त है। वह गुरुओं का भी गुरु और काल का भी काल है। योगी उसको ही अपने आपको पूर्ण रूप से ;ईश्वर प्रणिधान समर्पित कर इस संसार सागर से तर जाते हैं। उसकी भक्ति विशेष से मनुष्य के सब कष्ट दूर होकर अपवर्ग की प्राप्ति होती है।[70]

इस प्रकार उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा को ही दार्शनिक जगत् में ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, शिव, विष्णु, कृष्ण, हरि आदि नामों से कहा जाता है। उसके स्वरूप के विषय में निर्गुण या सगुण भेद होने पर भी उसे सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान्, नियन्ता, विभु, निर्विकार, अजर, अमर, सच्चिदानन्द आदि दिव्य गुणों से युक्त मानकर उसे इस जगत् का कर्ता, धर्ता, हर्ता मानकर स्मरण करते हैं।

अद्वैतवादियों ने उपमान का लक्षण इस प्रकार किया है-सादृश्य प्रमा के करण को उपमान कहते हैं।[71] यहां व्यापार रहित असाधारण कारण का ग्रहण किया गया हैऋ क्योंकि उपमिति उपमान का अन्य स्वरूप है। जिस व्यक्ति ने गांव में गौ जाति वाले प्राणी को देखा है वही व्यक्ति कालान्तर में अरण्य में जाकर गवय नामक पशु को देखता है। तब उस व्यक्ति को ''यह पशु गौर के सादृश्य है'' ऐसा ज्ञान होता है, उसके पश्चात् उस व्यक्ति को ''इस गवय जैसी ही मेरी गाय है'' ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान हो जाता है। इन दोनों ज्ञानों में से गवय में गौ सादृश्य का ज्ञान उपमान है और गौ में गवय का सादृश्य ज्ञान उपमिति है। अर्थात् यह गवय गाय जैसा है इस प्रकार का सादृश्यज्ञान उपमान है और गोनिष्ठ गवय का सादृश्य ज्ञान उपमिति है अर्थात् ''इस गवय जैसी ही मेरी गाय है'' यह उपमिति कहलाती है। गवय में गौ के सादृश्यज्ञान से गौ में गवय का सादृश्यज्ञान जन्य है। इसलिए उपमिति है। अर्थात् सादृश्यज्ञानजन्यज्ञानरूप उपमिति, गौ में गवय का सादृश्य ज्ञान हैं। इसी उपमिति का करण गवय में गो का सादृश्य ज्ञान है इसी प्रकार के ज्ञान को उपमान कहते है। इस प्रकार के उपमान की प्रक्रिया से सिद्ध होता है कि उपमान प्रमाण उपमिति प्रमाण का व्यापार रहित असाधारण कारण है।

चार्वाक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमाण को स्वीकार नहीं करते। इसलिए उसके उपमान विषयक लक्षणादि की समीक्षा नहीं की जाती। बौद्धदार्शनकारों में दिंडनाग उपमान को प्रत्यक्ष के अन्तर्गत स्वीकार तो करते हैं किंतु धर्मकीर्ति उपमान को अनुमान के अन्तर्गत ही स्वीकार करते है। वैशेषिक लोग इसे अनुमान में ही अन्तर्भूत करते हैं। सांख्य तथा योग उपमान को शब्द तथा प्रत्यक्ष के अन्तर्गत ही समाविष्ट करते हैं। सांख्य का कहना है कि गवय में गो सादृश्य का ज्ञान प्रत्यक्ष से होता है तथा गो-सादृश्यज्ञान् पशु के गवय होने में उपदेश कर्ता को वाक्य प्रमाणभूत है। जैन दर्शनानुयायी उपमान को प्रत्यक्षभिज्ञा मात्रा मानता है। मीमांसक न्याय और अद्वैत वेदान्त उपमान को एक स्वतन्त्रा प्रमाण के रूप में स्वीकार करते तो है किन्तु इनमें भाट्टमीमांसक और अद्वैत वेदान्तियों का उपमान विषयक लक्षण एवं मान्यता समान होने से इनका पृथक प्रतिपादन नहीं करते। हां नैयायिक उपमान को स्वतंत्रा प्रमाण रूप से स्वीकार करते हैं किन्तु लक्षण, करण, व्यापार और शक्ति के कारण और वादियों से इनका उपमान लक्षण सर्वथा भिन्न है-न्यायदर्शन में उपमान का लक्षण इस प्रकार किया है[72]-प्रसिद्ध साधर्म्य से साध्य साधन को उपमान कहते हैं प्रसिद्ध साधर्म्य है गवय, उस गवय से साध्यसाधन को अर्थात् समानरूप सम्बन्ध प्रतिपत्ति[73] को उपमान प्रयोजन कहते हैं। गो की गवय सारुप्यप्रतिपत्ति तो संज्ञा-संज्ञि सम्बन्ध को कहा जाता है। सीसंज्ञा संज्ञि सम्बन्ध ज्ञान के प्रति जो करण को उपमान कहते है।[74] और संज्ञासंज्ञि सम्बन्धज्ञान को उपमिति कहते हैंऋ इस प्रकार के उपमितिज्ञान के प्रति व्यापारवत् असाधारण कारण रूप करण को उपमान कहते हैं। अर्थात् गवय आदि संज्ञा का, गवय व्यक्ति संज्ञि के साथ सम्बन्ध अर्थात् शक्तिग्रह या वाच्यवाचक भाव का ग्रहण ही उपमिति है और उसका करण उपमान है।

किसी ग्रामीण पुरुष के लिए अरण्य में रहने वाले किसी व्यक्ति ने कहा कि गौ के सादृश्य गवय होता है[75] इस वाक्य को सुनकर और इस वाक्यार्थ का अनुभव करके, अरण्य में किसी स्थल में गवय पशु को देखा, वहां प्रत्यक्षविषयक गवयपिण्ड में गो सादृश्य दर्शन हुआ यही सादृश्य बुद्धि उपमिति का कारण है। गो सादृश्य पशु गवयपद का वाच्य है इस प्रकार के उपदिष्ट वाक्यार्थ का स्मरण व्यापार है, गवय गवयपदवाच्य है इस प्रकार की शक्ति ही उपमिति प्रमा है। इससे यह सिद्ध हुआ गो सदृश पिण्ड का प्रत्यक्ष सहकारी कारण माना गया। यही उपमान है। और वाक्यार्थ स्मरण व्यापार है। गवय पद की 777 का ज्ञान उपमिति रूप फल है। उपमिति शब्द की परिभाषा के विषय में नैयायिक और अद्वैत वादियों में मत भेद है। हां उपमान शब्द का अर्थ दोनों की दृष्टि में समान है। न्यायमत में गवयपद की वाच्यताज्ञान उपमिति पद का पारिभाषिक अर्थ है और उसका कारण वाच्यार्थनुभव अथवा सादृश्यविशिष्टपिण्डदर्शन है। अद्वैतमत में सादृश्यज्ञानजन्यज्ञान ही उपमिति पद का पारिभाषिक अर्थ है और उसका व्यापार रहित सादृश्यज्ञान है। इस प्रकार उपमिति शब्द के पारिभाषिक भेद से दोनों में भेद हैं। अद्वैत मत में व्यापार रहित असाधारण कारण ही करण है। किन्तु न्यायमत में वाक्यार्थ स्मरण अवान्तर व्यापार है, इस व्यापार से युक्त असाधारण कारण रूप करण उपमान है।

कुछ नैयायिक और कुछ अद्वैत वादियों ने वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान को भी उपमिति माना है। उनका कहना है कि खड्गमृग में 'गेण्डा या' उष्ट्र के वैधर्म्य ज्ञान से उष्ट्र में 'उंट' खड्गमृग का वैधर्म्यज्ञान होता है। पृथिवी में जल के वैधर्म्यज्ञान से जल में पृथिवी का वैधर्म्य ज्ञान होता है। इसलिए उष्ट्र में खड्गमृग का वैधर्म्य ज्ञान और जल में पृथिवी कावैधर्म्य ज्ञान उपमिति है, और उसका करण उपमान है। अर्थात् इनकी दृष्टि से विपरीत उपमान उपमिति भाव सम्भव है। किन्तु उनका यह कथन तर्कसंगत नहीं है। इन्हें पूछा जाय कि जैसे खड्गमृग में उष्ट्र में खड्गमृग का वैधर्म्य ज्ञान होता है, वैसा अश्व का भी उस समय सम्भव है या नहीं? और जल में पृथिवी के वैधर्म्यज्ञान के समान अग्नि, वायु आदियों का भी वैधर्म्य ज्ञान होने लगेगा या नहीं? अतः इससे उपमिति प्रमा न होकर भ्रम ही होने लगेगा, जो प्रमा रूप सिद्ध नहीं होगा अतः वैधर्म्य प्रक्रिया त्याज्य है।

सादृश्य-ज्ञानजन्य ज्ञानरूप उपमिति के करण के लक्षण को उपमान मान कर अद्वैत मत में आत्मा का या ब्रह्म का सादृश्य कहीं भी प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह एक ही तत्व है। तो भी मुमुक्ष को प्रपंचमिथ्यात्व की सिद्धि के लिए उपमान प्रमाण की उपादेयता है, गन्धर्वनगर कैसा होता है ऐसा किसी ने पूछा तो, कहा जाता है कि प्रपंच के सदृश गन्धर्व नगर है। जब कभी श्रवण किये हुये व्यक्ति ने ज्येष्ठ आदि महीनों में आकाश में बादलों से बने हुये नगराकार को देखा, तब यह गन्धर्वनगर प्रपंच के 'संसार' के सदृश है ऐसा चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है, उसके अनन्तर हमारा प्रपंच भी इस गन्धर्व नगर के सदृश है ऐसा ज्ञान होता है। वहां गन्धर्व नगर में प्रपंच सादृश्य ज्ञान व उपमान है और प्रपंच में गन्धर्वनगर का सादृश्यज्ञान उपमिति है। अतः प्रपंच मिथ्यात्त्व के लिए भी उपमान प्रमाण की उपादेयता अंशतः है। यद्यपि असंगतादि धर्म से आकाश के सदृश आत्मा है, इससे आकाश में आत्मा का सादृश्यज्ञान उपमान है, और आत्मा में आकाश का सादृश्य ज्ञान उपमिति है। इस प्रकार से भी उपमान प्रमाण की जिज्ञासु के लिए उपादेयता सिद्ध होता है।

किन्तु आकाशादियों में आत्मा का चौतनत्व, ज्ञानत्व आदि कोलेकर किंचित् भी सादृश्य नहीं होता उस समय आकाश और आत्मा का सादृश्यज्ञान संभव नहीं होने से अद्वैत सिद्धान्तानुकूल उपमिति का उदाहरण न मिलने से उपमान प्रमाण की इसमें 'अद्वैतसिद्धान्त में' अनुपादेयता ही सिद्ध होती है तो भी साम्प्रदायिक के अनुसार सामान्य जिज्ञासुओं के लिए इसका निरूपण किया गया है।

न्यायसूत्रा में कहा है कि प्रजात और प्रजयनीय ज्ञातव्य विषय के ज्ञान को उपमान कहते हैं।[76] न्यायदर्शन के अनुसार तीसरा प्रमाण उपमान है। प्रसिद्ध साधर्म्य से युक्त साध्य के साधन को उपमान कहते हैं।[77] तर्कसंग्रह में उपमिति के करण को उपमान कहा है।[78] नव्यदर्शन आर्यभाष्य में कहा है कि पूर्णज्ञात का नाम प्रसिद्ध तथा समानधर्म का नाम साधर्म्य है। लाधर्म्य, सापेक्ष तथा सारुप्य यह तीनों पर्याय शब्द हैं। पूर्वज्ञात पदार्थ के समान धर्म द्वारा साध्य-उपमेय की सिद्धि को उपमान-उपमिति कहते हैं और वह जिस कारण द्वारा ज्ञात हो उसका नाम उपमान है।[79]

न्यायदर्शन में उपमान प्रक्रिया के विषय को इस प्रकार व्यक्त किया है जैसे गौ के समान गवय तथा भाष है वैसे भाषपर्णो है। तर्क संग्रह में उपमिति के करण को उपमान कहा जाता है। संज्ञा और संज्ञिक के सम्बन्ध ज्ञान को उपमिति कहते हैं। उसका करण सादृश्य ज्ञान हैं। जैसे कोई मनुष्य गवय पद के वाच्य को न जानता हुआ किसी जंगली पुरुष से गौ सदृश गवय होता है-इस वाक्य को सुनकर वेंज जंगल में गया और वाक्यार्थ का संस्मरण करता हुआ गौ के सदृश पिण्ड को देखता है-यही उपमान प्रमाण है। परन्तु वैशेषिक एवं जैन, बौद्ध इसको स्वीकार नहीं करते हैं।

न्यायदर्शन में उपमिति की समानता के आधार पर अर्जित किए हुए ज्ञान के उत्कृष्टतम साधन को उपमान कहते हैं।[80] तर्कसंग्रह में इसकी मूल प्रक्रिया को इस प्रकार कहा है।[81] ''उपमानजन्य ज्ञानमुपमिति'' उपमान जन्य ज्ञान का नाम उपमिति हैं। अर्थात् ''गवयपदवाक्य:'' यह गवय पद वाक्यार्थ है। इस प्रकार पद पदार्थ के सम्बन्ध ज्ञानशक्ति ज्ञान को उपमिति कहते है। इस नीति के सादृश्य का ज्ञान 'करण' आप्तवाक्यार्थ की स्मृति ''व्यापार'' तथा गवयादि पदों का शक्तिमान फल है। जो इस गौ, गवय के साधर्म्य को जान लेता है। तब उसको कालानन्तर में साधर्म्य ज्ञान द्वारा गवयादि पदों के अर्थ के साथ संज्ञासंज्ञि सम्बन्ध होता है, वही उपमान प्रकाण का फल उपमिति ज्ञान कहलाता है। जैसा कि न्यायकन्दली में कहा है।[82]

कई लोक सादृश्य ज्ञान की भांति वैधर्म्य ज्ञान को भी उपमिति का करण मानते हैं। उनका कथन यह है-खङ्गमृग पद के वाक्यार्थ को न जानने के कारण नगरवासी ने वनवासी से सुना था कि ऊंट से विपरीत ह्रस्वग्रीवादि अवयवों वाला और नासिका के अनुभाग में सींग वाला पशुविशेष खङ्गमृग गेंड़ा पद का वाक्यार्थ है।[83] इस प्रकार वनवासी पुरुष के वाक्य को सुनकर नगर वासी ने वन में जाकर वैसे ही पशुविशेष का देखा। उक्त वाक्यार्थ के स्मरण से उसको यह ज्ञान हुआ कि यह खङ्गमृग पद का वाक्यार्थ है।[84] इसी का नाम उपमिति का वैधर्म्य ज्ञान ''करण'' वाक्यार्थ स्मृति व्यापार, तथा उष्ट्र विरुधधर्म वाले व्यक्ति का प्रत्यक्ष सहकारिकरण है। परन्तु नवीन नैयायिक उक्त व्यक्ति के इन्द्रिय जन्य ज्ञान को करण, वाक्यार्थ स्मृति को व्यापार और वाक्यार्थ ज्ञान को सहकारी कारण मानते हैं। पद, उक्त दोनों मतों के कारण भेद होने पर भी फल भेद नहीं है।

बौद्ध दर्शन के अध्ययन से अनुभूति होती है कि बौद्ध भी जैनियों के समान अपने बौद्ध तर्कशास्त्र में प्रमाणों को मान्यता देते हैं। यह उपमान को जरा भी सहमति प्रदान नहीं करते। परन्तु इन्होंने अपना पाण्डित्य सहजतया और विशेषतया क्षणिकत्व सिद्धि अर्थ क्रियाकारिता प्रत्यक्ष एवं अनुमान की सिद्धियों एवं शब्द की सहमति में विशेष मत प्रदान किया है[85] और उपमान प्रमाण की पूर्णरूपेण उपेक्षा की है। इनका प्रामाण्यवाद पर विशेष सैद्धान्तिक मत है। संक्षेप में बौद्ध दर्शन की समीक्षा से उपमान की निरर्थकता सिद्ध होती है। धर्मकीर्ति ने प्रमाणवार्तिकम् में दो प्रमाणों को सहमति प्रदान की है। कहा भी है-''प्रमाणस्य द्वैविध्यात्''[86] इसमें प्रत्यक्ष अनुमान का नाम लिया उपमान को कोई महत्व नहीं दिया और बाद में शब्दादिक को भी प्रमाण सिद्ध किया। लेकिन प्रमाण सांख्यविप्रतिनिराकरण में दो का ही नाम लिया है। इस तर्क से सिद्ध होता है कि उपमान प्रमाण को बौद्ध दर्शन महत्वता प्रदान नहीं करता।[87]

बौद्ध ज्ञानमीमांसा में महायान मत के दोनों सम्प्रदायों-योगाचार विज्ञानवाद और माध्यमिक शून्यवाद की ही प्रबलता है।

योगाचार शुद्ध विज्ञानवादी दर्शन है। यहाँ मात्र विज्ञान की ही सत्ता है, अन्य किसी की भी नहीं। यह विज्ञान चौतन्य स्वरूप तो है किन्तु उस रूप में सत् नहीं है जिस रूप में वेदान्ती इसकी सत्ता का निरूपण करते हैं। वेदान्त मत का विज्ञान अथवा चेतना शुद्ध और शाश्वत है। दूसरी ओर योगाचार विज्ञानवाद में विज्ञान विज्ञप्ति का प्रवाहमात्र है। यह प्रतिक्षण परिवर्तनशील है अत एव इसे श्शाश्वतश् नहीं कहा जासकता। वसुबंधु ने विंशतिका में कर्म-फल-विपाक से उत्पादित विज्ञान प्रवाह की बात कही है। योगाचार विज्ञानवाद के अनुसार यही विज्ञान-प्रवाह हमारे दैनिक अनुभवों में वस्तु रूप में उपस्थित होता है।

योगाचार विज्ञानवाद के अनुसार ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान में कोई मौलिक भेद नहीं। श्शाताश् नामक जिस तत्त्व को ज्ञान का अवयव समझा जाता है वह ज्ञाता भी विशुद्ध विज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार योगाचार मत में ज्ञान अथवा विज्ञान मात्र ही सत्य है। समस्त ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में (या इससे आगे सर्वत्र) यही विज्ञान ज्ञाता, ज्ञेय और स्वयं ज्ञान रूप उपस्थित होता है। यह विज्ञान स्थायी नहीं क्षणिक है अत एव इसे विज्ञप्ति कहते हैं।[88] यह अनेक रूपों में भाषित क्षण-मात्र हैं। शून्यतावादी मत इसके भी आगे जाकर इस विज्ञान अथवा विज्ञप्ति को भी अंतिम सत्य अथवा परामर्श नहीं मानता। शून्यतावादी मत के अनुसार हमारा समस्त व्यावहारिक अथवा जागतिक ज्ञान संवृत्ति अथवा आभास मात्र है। यह सांवृतिक ज्ञान सत्य तो है किन्तु इसकी सत्ता मात्र व्यवहार जगत् तक ही सीमित है। परमार्थ रूप में तो शून्यता ही सत्य है। शून्यता सबका, यहाँ तक कि विज्ञान का भी निषेध है। इस प्रकार शून्यता निषेध-मात्र है।

यही निषेध रूप शून्यता जब ज्ञानमीमांसा का आधार बनती है तो बौद्ध शून्यतावादियों के मत में ज्ञान भी निषेधात्मक हो जाता है। इस रूप में ज्ञान न तो गुण है, न द्रव्य है, न क्रिया है, न संबंध है, वरन् यह शून्यता मात्र है। पारमार्थिक रूप से शून्य अथवा निषेध रूप होने पर भी बौद्ध ज्ञान की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार करते हैं। इसीलिए बौद्ध मत ज्ञान की व्यवहारवादी व्याख्या ही प्रस्तुत करता है। बौद्ध न्याय के विषय में शेरबात्स्की लिखते हैं, ''यह किसी परम सत्ता का विज्ञान नहीं, किसी वस्तु का उसी रूप में विज्ञान नहीं जैसा कि उसका वास्तविक रूप होता है, अथवा (यह) बाह्यार्थ के सत-असत् का विज्ञान नहीं। सरल मनुष्य जिस ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं इसी ज्ञान का इस शास्त्र में विचार किया गया है।''[89]

इस प्रकार बौद्ध ज्ञानमीमांसा जिस ज्ञान की विवेचना करती है वह ज्ञान तात्त्विक न होकर व्यावहारिक अथवा दैनिक जीवन का ज्ञान है। इस ज्ञान के विषय में धर्मकीर्ति कहते हैं कि ''यह ज्ञान अर्थ का प्रकाशक होता है।''[90] यहाँ अर्थ का प्रकाशक का अर्थ है विषय का बोधक। इस प्रकार बौद्ध मत के अनुसार सामान्यत: ज्ञान ज्ञाता की चेतना में उत्पन्न विषय का बोध है।

स्पष्टत: बौद्ध मत के अनुसार विशुद्ध अनुभूति की अपेक्षा प्रत्यभिज्ञा ही ज्ञानमीमांसीय विवेचना की विषयवस्तु है। यह प्रत्यभिज्ञा श्अनुभूति के अनन्तर ज्ञानश् है किन्तु यह प्रत्यभिज्ञा स्मृति से भिन्न है। प्रत्यभिज्ञा और स्मृति में भेद यह है कि प्रत्यभिज्ञा श्साक्षात् विषयश् के द्वारा उत्पन्न बोध ही है, किन्तु प्रत्यभिज्ञा साक्षात् विषय के बोध से इस अर्थ में भिन्न है कि साक्षात् विषय का बोध नामरूप रहित होता है जबकि प्रत्यभिज्ञा में विषय का बोध नामरूप सहित होता है।

पुन: स्मृति भी विषय का नामरूप सहित बोध है जो अनुभूति के अनन्तर ज्ञानश् है किन्तु स्मृति और प्रत्यभिज्ञा में भेद है। वह भेद इस प्रकार है कि प्रत्यभिज्ञा विषय के साक्षात् बोध से उत्पन्न (वस्तु का) नामरूप सहित ज्ञान है जबकि स्मृतिजन्य ज्ञान साक्षात विषयश् द्वारा उत्पन्न नहीं होता।

निष्कर्षत: कहा जा चुका है कि बौद्ध ज्ञानमीमांसा श्ज्ञानश् ज्ञान की व्याख्या श्विषय के बोधश् के रूप में करती है। पुन: विषय का बोध भी दो प्रकार से संभव है-(क) विषय का नामरूप रहित बोध (ख) विषय का नामरूप सहित बोध। विषय के नामरूप रहित बोध को श्विशुद्ध अनुभूति कहते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान इसे संवेदना का नाम देता है। डेविड ह्यूम जैसा संशयवादी भी सब पर संशय करता है किन्तु इस संवेदना पर नहीं। इस संवेदना को ह्यूम अनुभवजन्य ज्ञान की आधारशिला के रूप में स्वीकार करता है। वस्तु के नामरूप सहित बोध को सामान्यत: प्रत्यभिज्ञा का नाम दिया जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान इसे प्रत्यक्षीकरण कहता है। भारतीय ज्ञान-विज्ञान में निर्विकल्पक और सविकल्पक प्रत्यक्ष का भेद किया गया है। नव्य न्याय के मत में निर्विकल्पक प्रत्यक्ष वस्तु का नामरूप रहित बोध है जो अनभिलाप्य है तथा सविकल्पक प्रत्यक्ष वस्तु का नामरूप सहित बोध है। बौद्ध मत के अनुसार ज्ञानमीमांसीय विवेचन का विषय यह सविकल्पक ज्ञान (जिसे बौद्ध मत प्रत्यभिज्ञा कहता है) ही है क्योंकि वाणी का विषय वस्तु का नामरूप सहित ज्ञान ही होता है, नामरूप ज्ञान नहीं।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रकृतेर्महास्ततोण्हंकारस्तस्माद्गणश्च पोडशक:। तस्मादपि पोडशकात् पंचभ्य: पंचभूतानि।। सांख्यकारिका-12
2. तस्मादन्योन्यमाश्रित्य ह्योतं प्रोतमनुक्रमात। पंचभूतमयी भूमि: सा चेतनसमन्विता।। त्रिशि.उप. 4
3. तत ओषधयोऽन्नं च तत: पिण्डाश्चतुर्विधा: रसासृघ्मांसमेदोण्स्थमज्जाशुक्राणि धातव:।।
4. केचित्तद्योगत: पिण्डा भूतेभ्य: सम्भवा: क्वचित्।। त्रिशि.2/6
5. ब्रह्म शब्दस्य हि व्युत्पाद्यमानस्य नित्यशुद्धत्वादयोण्र्था: प्रतीयन्ते बृहतेर्धातोरनुगमात्।। ब्रह्मसूत्रा 1/1/1
6. रत्नप्रभा टीका 1/1/1
7. वृहणाद् बृहत्वदात्मा ब्रह्मेति गीयते।। ब्रह्मसूत्रा शांकर भाष्य-सत्यानन्दी, दीपिका, पृ. 30
8. ब्रह्म वृहति वर्धते निरतिशयमहत्त्वलक्षबुद्धिमान् भवतीत्यर्थ:। मनिन् नकारस्याकार: रत्वं च।। शब्द कल्पद्रुम, पृ.442
9. योण्खिलं जगाग्निनिर्माणैन बृहति वर्द्धयति स ब्रह्म, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म।। सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास
10. पतिर्बभूपासभोजनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा।।). 6/36/4
11. सूत्रां सूत्रास्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत्।। अथर्व. 10/8/47
12. यत्रा लोकांश्च कोशांपो ब्रह्म जना बिदु:। असच्च यत्रा सच्चान्त: स्कम्भं तं ब्रूहि कतम: स्विदेव स:।। अथर्व. 10/7/10
13. ब्रह्मणं ब्रह्ममवामहं गोभि: सुखायमृग्मियम्।। गां दोहसे हुवे।।). 6/45/7
14. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तदुवायुस्तदु .... यजु. 32/1
15. स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमब्रणभस्नविरं शुद्धमपापविद्धम्। ..... व्यदधाच्छाश्वतीभ्य: समाभ्य:।। यजु. 40/8
16. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत ..... यजु. 40/1
17. तद्विष्णो: परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय:। दिवीव चक्षुराततम्।।). 1/11/20
18. ओम। खं ब्रह्म। यजु. 40/17
19. ये पुरुष ब्रह्म विदुस्ते विदु: परमेष्ठिनम्।। अथर्व. 10/7/17
20. सूर्याचन्द्रमसो धाता यथापूर्वमकल्पयम्।। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्व:।। ऋक् 10/190/
21.हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्यजात: पतिरेक आसीत्।। यजु. 25/10
22.इन्द्रोविश्वस्य राजति।। सामवेद 456
23.यो भूतं च भव्यं च ..... ब्रह्मणे नम:।। अथर्व. 10/8/1
24.सदाधार पृथिवीमुत द्यामुतेमाम्।। यजु. 13/4
25.विश्वतश्चचक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।स बाहुभ्यां धमति स पतत्रौद्यावाभूमीजनयन् देव एक:।। 10/81/3
26.पादोण्स्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।। यजु. 31/3
27.पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ओम् खं ब्रह्म। बृह.अ. 5/1/1

28.यदैतमनुपश्यतथात्मानं देवमंजसा। ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्तस्ते।। बृह.उप. 4/4/15
29.यस्भादर्वाक् संवत्सरोण्होभिः परिवर्तते। तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेण्मृतम्।। बृह.उप. 4/4/16
30. पंचयस्मिन् पंचजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः। तमेवमन्ये आत्मानेविद्वान् ब्रह्मामृतोण्मृतम्।। वृह.उप. 4/4/17
31.प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरत श्रोत्रास्य श्रोतं मनसो ये मनो विदुः। तेनिचिर्क्युब्रह्म पुराणमग्र्ययम्।। बृ.उ. 4/4/18
32.मनसैवानुद्रष्टव्यंनेहनानास्ति किंचन। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।। वृह.उप. 4/4/19
33.स वा एष महानज आत्माण्जरोण्मरोण्मृतोण्भयो ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद।। बृह.उप. 4/4/25
34. बृह.उप. 3/7/16-23
35. तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्य स्थूलमनष्वह स्वमदीर्घभलोहितमस्नेहमच्छायायमत.मोण्वाऽवाकाशमस मरसमगन्धमचक्षुस्कमश्रोत्रामवागमनोण्तेजस्कमप्राणममुखममात्रामनन्तरमबाह्यं तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चना।। बृह.उप.
36. भृगुर्वै वारुणिः वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति।। तैति.उप.
37. तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति।। तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली प्रथम अनुवाक्।
38. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन। सोण्श्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।। तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मवल्ली प्रथम अनुवाक्।
39. तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्याः ओषधयः। ओषधीभ्योण्न्नम्। अन्नाद् रेतः। रेतसः पुरुषः। सवा पुरुषोंण्न्नरसमयः।। तैत्तिरीय ब्राह्मण
40. आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन। तैत्ति. 2/4
41. यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येण्नात्म्येण्निरुक्तेण्निलयनेण्भ्यं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोभयं गतो भवति।। तैत्ति.उप. 2/7
42. रसो वै सः रसं लब्ध्वाण्ण्नन्दी भवति।। तैत्ति.उप. 2/7
43. यो वै भूमा तदमृतम्।। छा.उप. 7/24/1
44. यदल्पं तन्मर्त्यम्। छा.उप. 7/24/1
45. अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्म पुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म .....। छा.उप. 8/1/1
46. ब्रह्मपुरे सर्वं समाहितं सर्वाणि च भूतानि .....। छा.उप. 8/1/4
47.ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। ईशोपनिषद् 1 तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदनन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः।। ईशोपनिषद् 5
48. यदर्चिमद्यदणु यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च।.....तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि।। मुण्डकोपनिषद् 2/2/2
49. विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रंज्योतिषांज्योतिस्तदाविदो विदुः।। मुण्डकोपनिषद् 2/2/1
50. यदापश्यः पश्यतेरुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।। मुण्डकोपनिषद् 3/1/3
51. यत्तद्रेश्यमग्राह्यम् अगोत्रास्म अवर्णम् अचक्षुः श्रोत्रां तदपाणिपादम्।.....परिपश्यन्ति धीराः।। मुण्डकोपनिषद् 1/1/6
52. यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः। तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते।। मुण्डकोपनिषद् 1/1/9
53. ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म.....विश्वमिदं वरिष्ठम्।। मुण्डकोपनिषद् 2/2/11
54. तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति।। प्रश्नोत्तरोपनिषद् 4/11
55. अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्वस्थितम्। महान्तं विभुमात्मानं .....। कठोपनिषद् 1/2/21
56. नित्योण्नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान। कठोपनिषद् 2/5/13
57. श्रोत्रास्य श्रोत्रां मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं सउप्राणस्य प्राणः। चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः ..... केनोपनिषद् 122
58. प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।। मुण्डकोपनिषद् 2/2/4
59. अयमात्मो ब्रह्म।। बृहदारण्यकोपनिषद् 2/5/19
60. अहं ब्रह्मास्मि।। बृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/10
61. ब्रह्मणोण्व्यक्तम्।। त्रिशिखोपनिषद् 1
62. सच्छन्दवाच्यमविद्याशबलं ब्रह्म।। त्रिशिखोपनिषद् 1
63. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/16
64. उद्गीतमेतत परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रायं सु.....ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः।। श्वेताश्वतरोपनिषद् 1/5
65. भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविद्यां ब्रह्ममेतत।। श्वेताश्वतरोपनिषद् 1/12
66. सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास
67. आर्यसमाज का द्वितीय नियम
68. तत्वमसि अथवा अद्वैत मीमांसा-पृ. 9 भूमिका
69. तत्वमसि अथवा अद्वैत मीमांसा-पृ. 9 भूमिका
70. पातजलयोगसूत्रा 1/23-29
71. वेदान्तपरिभाषा पृ. 179
72. प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्। न्यायसूत्रा ष.द.सू.संग्रह. पृ. 155

73. समाख्यासम्बन्धप्रतिपत्तिरुपमानार्थः। न्यायवार्तिक पृ. 57
74. सम्बन्धस्य परिच्छेदः संज्ञायाः संज्ञिना सह। प्रत्यक्षादरे साध्यत्वादुपमानपफलं विदुः। न्यायकुसुमांजलि पृ 120
75. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली पृ. 288
76. प्रज्ञातस्य सामान्यं प्रजयनीय ज्ञातव्य विषयज्ञानमुपमानम्। न्यायदर्शन उपमान प्रकरण
77. प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम। न्यायदर्शन 1/1/6
78. उपमितिकरणमुपमानम। तर्कसंग्रह 85, तत्करणं सादृश्यज्ञानम्।
79. प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम। न्यायभाष्य पृ. 56-57
80. उपमानप्रमाणमूलं हि साधर्म्यमेव तच्च त्रिविधं सम्भवति-अत्यन्तसाधर्म्यम्, प्रायः साधर्म्यम्, एकदेशसाधर्म्य च। एतस्मात् साधर्म्य त्रायादुपमानप्रमाणस्य सिद्धिर्न भवति इत्यर्थः। गविगोरत्यन्तसाधर्म्यस्य सिद्धिर्न भवति इत्यर्थः। गविगोरत्यन्तसाधर्म्यस्य प्रायसाधर्म्यस्य गौरी च सर्वस्यैक देशसाधर्म्यस्य विद्यमानत्वादि भावः।। 44, अ. 2, अत्यन्तप्रायैकदेशसाधर्म्यादुपमानसिद्धि, न्यायदर्शन पृ. 36
81. उपमिति करणमुपमानं तत्करणं सादृश्य ज्ञानम। तथा हि कश्चित् गवय पदार्थज्ञानं कुतश्चिदारण्यपुरुषात् गो सदृशो गवय इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थस्मरन् गोसदृशं पिण्डं पश्यति तदनन्तरमसौ गवय शब्दवाच्य इत्युपमितिरुपपद्यते। अथोपमानखण्ड तर्कसंग्रहः।
82. सम्बन्धस्य परिच्छेदसंज्ञायासंज्ञिनां सह। प्रत्यक्षादेरसाध्यत्वादुपमानपन्नं विदुः।। न्यायकन्दली
83. उष्ट्रविधर्म्यानासिकाग्रे च.....। न्यायभाष्ये पृ. 96
84. उष्ट्रविधर्मा नासिकाग्रे च .....। न्यायभाष्ये पृ. 96
85. सर्वदर्शनसंग्रहः मध्व के प्रमाण संग्रह द्वारा।
86. प्रमाणस्य द्वैविध्यस्य दर्शनपूर्वकं, तत्रा सांख्याविप्रतिपत्तिनिराकरणं ज्ञानं द्विविधं विषयद्वैविध्यात् शक्त्यक्तिः अर्थाक्रियाम् देशाद्विनार्थो अनर्थाधिमोक्षतः। प्रमाणवार्तिकम् पृ. 99
87. भारतीय दर्शनशास्त्रा की भारतीय तत्वज्ञान की धाराओं का सांगोपांग विवेचन। बौद्ध दर्शन से। वामदेव उपाध्याय, पृ. 195
88. विज्ञप्तिमात्रता सिद्धिः। (बौद्ध-न्याय, भाग-1, पृष्ठ-63)
89. बौद्ध न्याय, भाग-1, पृ० 84
90. अर्थप्रकाशो वा-प्रमाणवार्तिक 01/08

दृष्टिकोण DRISHTIKON

India's Leading Multidisciplinary Referred Hindi Language Journal

UGC CARE LISTED

Certificate Of Publication

This is to certify that Mr./Ms. रमेश कुमार (शोधछात्र, योग विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड)
डॉ० अरुण कुमार सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड), in recognition of Publication of the
Paper entitled औपनिषद परम्परा में ब्रह्म का स्वरूप तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में उपमान प्रमाण की उपादेयता (महर्षि दयानन्द सरस्वती के विशेष सन्दर्भ में)

Published in Drishtikon Journal
Vol. 13 Issues 1 in जनवरी फरवरी 2021

Impact Factor 5.051 ISSN 0975-119X

Editor

यौगिक परम्परा में योगी स्वात्माराम

उमेश कुमार

शोधछात्र, योग विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

डॉ० अरुण कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

योगी स्वात्माराम सूरि हठयोग परम्परा के मूर्धन्य योगियों में से एक हैं। इन्हें नाथयोग परम्परा में 'योगेन्द्र' नाम से पुकारा जाता है। स्वामी स्वात्माराम हठयोग के जगप्रसिद्ध योगी मत्स्येन्द्रनाथ[1] गोरक्षनाथ आदि के परम्परा के थे।[2] स्वामी स्वात्माराम कृत 'हठप्रदीपिका' का रचनाकाल अधिकांश विद्वानों के मतानुसार चौदहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर सोलहवीं शताब्दी का मध्य माना है 1350-1550।[3] अतः उनका जन्म इसी समयावधि के बीच किसी शुभ मुहूर्त में सौभाग्यशाली भारतवर्ष के कोई धार्मिक एवं पवित्र परिवार में हुआ होना चाहिए। जिन्होंने कालान्तर में योग के क्षेत्र में जो भ्रान्तिमय वातावरण बनता जा रहा था, उसमें हठप्रदीपिका जैसी ग्रन्थ की रचना कर न केवल यौगिक भ्रान्तियों को दूर किया, अपितु हठयोग के विशुद्ध स्वरूप का विवेचन कर इसे सर्वसामान्य जनता व गृहस्थों के लिए भी सुलभ कराये।[4]

हठप्रदीपिका'[5] योगीन्द्र स्वात्माराम प्रणीत हठयोग के श्रेष्ठ ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ नाथयोग परम्परा में प्रचलित 'हठयोग' साधना का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत करता है। स्वामी स्वात्माराम जी के अनुसार हठयोग के मात्र चार अंग[6] हैं, इसलिए इसे 'चतुरंग योग' के नाम से भी पुकारा जाता है। जबकि अन्य योगविदों में कोई छह अंग गोरक्ष और अमृतनादोपनिषद्, कोई सात घेरण्ड, कोई आठ पतंजलि, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद् और कोई-कोई तो योग के पन्द्रह अंगों तेजोबिन्दूपनिषद् की चर्चा करते हैं।[7] इस ग्रन्थ में प्राणायाम के सम्प्रति सुविज्ञात आठों प्रकारों का विस्तार से विवरण मिलता है। स्वात्माराम की यह रचना बाद के बहुत सारे हठयोग के लेखकों के लिए प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हुई। यह योगचिन्तामणि, हठरत्नावली, हठ संकेत चन्द्रिका तथा हठतत्त्वकौमुदी जैसे पुस्तकों को देखने से समझा जा सकता है।[8] स्वात्माराम ने हठयोग की मुनि और योगी इन दो विशिष्ट परम्पराओं के बीच सपफलतापूर्वक सामंजस्य स्थापित किया है।[9]

इस ग्रन्थ में समाहित चार उपदेशों में से प्रथम उपदेश में हठयोग की उपयोगिता का आख्यान करते हुए 'आदिनाथ', 'मत्स्येन्द्रनाथ', 'शावरनाथ' आदि अनेक नाथ सिद्धों का उल्लेख किया है।[10] तत्पश्चात् योग-साधना हेतु उचित स्थान, योग के बाधक एवं साधक तत्त्व,[11] आचरण सम्बन्धी निर्देश,[12] दस यम-नियम, विविध आसनों का स्पष्टीकरण करते हुए यह स्पष्ट किया है कि हठयोग सम्मत 'क्रियायोग' द्वारा ही योग की सिद्धि होती है।[13] द्वितीय उपदेश में 'प्राणायाम' को चित्तवृत्तिनिरोध में सहायक[14] बताते हुए 'षट्कर्म'[15] एवं 'कुम्भक प्राणायाम' के विभिन्न अष्टभेदों[16] का निरूपण किया गया है। तृतीय उपदेश में मुद्रा एवं बन्धों का विवेचन करते हुए मुद्रा को सिद्धिदायिनी[17] कहा गया है। चतुर्थ उपदेश में राजयोग के माहात्म्य का निरूपण किया गया है। इसी उपदेशान्तर्गत राजयोग, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय तत्त्व, शून्याशून्य परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन, जीवन्मुक्ति, सहजा, तुरीय, आदि अवस्थाओं को समाधि का पर्याय माना गया है। तत्पश्चात् मन एवं प्राण के लय की प्रक्रिया का प्रतिपादन करते हुए मन एवं प्राण के लय में उपयोगी शाम्भवी मुद्रा, उन्मनी मुद्रा तथा खेचरी मुद्रा विवेचित हैं। नाद-साधना की उपयोगिता एवं नाद-साधना की आरम्भ, घट, परिचय एवं निष्पत्ति इन चार अवस्थाओं का प्रतिपादन है। अन्त में समाधिस्थ योगी की अवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

स्वामी स्वात्माराम कृत योग-साधना पद्धति-

स्वामी स्वात्माराम कृत योग-साधना पद्धति 'हठयोग' या 'चतुरंगयोग' है। इस पद्धति का मूल विवेचन हठप्रदीपिका में मिलता है। चतुरंग योग के चार अंग हैं-1 आसन, 2 प्राणायाम, 3 बंध एवं मुद्रा तथा 4 नादानुसंधान।

1. **आसन-**

हठप्रदीपिका में 15 आसनों का उल्लेख मिलता है।[18]

वे हैं-1 स्वस्तिकासन, 2 गोमुखासन, 3 वीरासन, 4 कूर्मासन, 5 कुक्कुटासन, 6 उत्तानकूर्मासन, 7 धनुरासन, 8 मत्स्येन्द्रासन, 9 पश्चिमोत्तानासन, 10 मयूरासन, 11 शवासन, 12 पद्मासन, 13 सिंहासन, 14 भद्रासन, 15 शशकासन।

2. **प्राणायाम**-

हठप्रदीपिका में प्राणायाम को आठ भागों में बाँटा गया है, जिसे 'अष्टकुंभक' कहा जाता है। हठयोग में प्राणायाम को 'कुंभक' कहा जाता है। पुराणों और स्मृतियों में दो प्रकार के प्राणायामों की चर्चा की गई है-सगर्भ मंत्रयुक्त और अगर्भ मंत्ररहित, किन्तु स्वात्माराम ने प्राणायाम के अभ्यास को मंत्रोच्चारण के साथ जोड़ा नहीं है।[19]

3. **बंध एवं मुद्रा**-

बंध का अर्थ होता है-बाँधना, रोकना या संकुचित करना। इस क्रिया के द्वारा शरीर के किसी अंग विशेष को बाँधकर वहाँ से आने-जाने ऊँच-नीचे वाले संवेदनाओं को रोककर लक्ष्य विशेष की ओर भेजना 'बंध' है। स्वामी स्वात्माराम जी ने कुंभक की अवधि में बंध को अनिवार्य माना है। बंधों में आंतरिक अंगों की मालिश होती है। रक्त का जमाव दूर होता है। बंध तीन प्रकार के होते हैं-1 जालंधर बंध, 2 उड्डियान बंध और 3 मूल बंध।

आसन की वह विशेष स्थिति, जिसमें प्राणायाम सम्मिलित हो, परन्तु जो कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने में सहायक हो, उसे मुद्रा कहते हैं। हठप्रदीपिका में 10 प्रकार की मुद्राओं का वर्णन है[20]-1 महामुद्रा, 2 महाबंध, 3 महावेध, 4 खेचरी, 5 उड्डियान, 6 मूलबंध, 7 जालंधर बंध, 8 विपरीतकरणी, 9 वज्रोली, 10 शक्ति चालिनी।

नादानुसंधान-

यह तीन शब्दों से मिलकर बना है-

नाद+अनु+संधान = नादानुसंधान।

नाद = अंतर्ध्वनि।

अनु = अनुसरण या पीछे-पीछे।

संधान = सतर्कता या पूर्ण चौतन्यता के साथ लग जाना।

इस प्रकार नादानुसंधान का अर्थ हुआ अन्तर्ध्वनि के पीछे-पीछे पूर्ण चौतन्यता से लग जाना या लय हो जाना ही नादानुसंधान है। नादानुसंधान की चार अवस्थाएँ होती हैं[21]-

1 आरम्भावस्था - ब्रह्मग्रन्थि का भेदन होता है।

2 घटावस्था - विष्णुग्रन्थि का भेदन होता है।

3 परिचयावस्था - रुद्र ग्रन्थि का भेदन होता है।

4 निष्पत्ति अवस्था- सहस्रार का द्वार खुल जाता है।

वीणा की झंकार सुनाई पड़ती है। उसी ध्वनि में लय कर देना ही नादानुसंधान है। आज के इस युग में योग को एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में भी देखा जा सकता है। ऐसा भी पाया गया है कि इससे कई रोगों की चिकित्सा प्रभावशाली ढंग से की जा सकती है। जिसका पहला श्रेय योग के ग्रन्थों को ही जाता है और उनमें भी विशेष कर हठयोग के ग्रन्थों को। स्वात्माराम की हठप्रदीपिका जो हठयोग का बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। स्वात्माराम ने हठप्रदीपिका में आसन, प्राणायाम, मुद्राओं आदि के वर्णन क्रम में रोगों के नाम तथा तत्तद् अभ्यासों द्वारा उनकी चिकित्सा किये जाने की बात भी विस्तार से की है।[22]

स्वात्माराम के दार्शनिक विचार-

यद्यपि स्वात्माराम ने व्यवस्थित रूप से दर्शन का निरूपण नहीं किया है, किन्तु हठप्रदीपिका में कुछ वक्तव्य हमें यहाँ-वहाँ मिलते हैं, जिनके द्वारा हम प्रस्तुत कृति की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निश्चित अनुमान लगा सकते हैं।

उदाहरणार्थ -

मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्।
निःशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मेति गीयते।।
यस्तत्त्वान्तो निराकारः स एव परमेश्वरः।।

इन पंक्तियों से विदित होता है कि स्वामी स्वात्माराम जीवात्मा तथा परमात्मा की अभिन्नता को मानते हैं और यह अभिन्नता उनके अनुसार चित्तवृत्तियों के कार्यरत रहने तक नहीं अनुभव किया जा सकता।

सृष्टि की प्रकृति के सन्दर्भ में स्वात्माराम अद्वैतवेदान्तियों के समान ही विचार रखते प्रतीत होते हैं। ''संकल्पमात्रकलनैव जगत्समग्रम्'' और ''मनोदृश्यमिदं सर्वं यत्किचित्सचराचरम्'' पढ़ने को मिलता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सृष्टि जैसा हम इसे जानते हैं अन्तिम रूप से सत्य नहीं है। वह एक प्रातिभासिक सत्य है और यह केवल व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए वास्तविक माना जा सकता है।[23]

उपर्युक्त विवेचन से ऐसा अवबोध होता है कि यौगिक परम्परा में 14 वीं शताब्दी के नाथ योगी स्वात्माराम योग परम्परा के संवाहक के साथ ही यौगिक ज्ञान के आधुनिक युगानुकूल प्रस्तोता व व्याख्याता हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1.
2. हठविद्यां हि मत्स्येन्द्रगोरक्षाद्या विजानते।
स्वात्मारामोऽथवा योगी जानीते तत्प्रसादत:।। (ह.प्र. 1.4)
3. पृ. 9, प्रस्तावना (अंग्रेजी संस्करण से), स्वामी दिगम्बर जी और डा. पीताम्बर डा. कैवल्यधाम, लोनावाला।
4. भ्रान्त्या बहुमतध्वान्ते राजयोगमजानताम्।
हठप्रदीपिकां धत्ते स्वात्माराम: कृपाकर:।। (ह.प्र. 1.3)
5. स्वामी स्वात्माराम कृत ग्रन्थ को कई लोग 'हठयोग प्रदीपिका' के नाम से सम्बोधित करते हैं। लेकिन स्वयं स्वात्माराम ने अपने प्रथम उपदेश में ही 'हठप्रदीपिका' कहा है न कि 'हठयोगप्रदीपिका।' यथा –
भ्रान्त्या बहुमतध्वान्ते राजयोगमजानताम्।
हठप्रदीपिकां धत्ते स्वात्माराम: कृपाकर:।। (ह.प्र. 1.3)
अत: नि:संदेह स्वामी स्वात्माराम प्रणीत ग्रन्थ 'हठप्रदीपिका' है।
6. आसनं कुम्भकं चित्रां मुद्राख्यं करणं तथा।
अथ नादानुसंधानमभ्यासानुक्रमो हठे।। (ह.प्र. 1.56)
7. पृ. 2, प्रस्तावना, स्वामी दिगम्बर जी और डा. पीताम्बर झा, कैवल्यधाम, लोनावाला।
8. पृ. 1, प्रस्तावना (अंग्रेजी संस्करण से), स्वामी दिगम्बर जी और डा. पीताम्बर झा, कैवल्यधाम, लोनावाला।
9. वसिष्ठाद्यैश्च मुनिभिर्मत्स्येन्द्राद्यैश्च योगिभि:।
अङ्गीकृतान्यासनानि कथ्यन्ते कानिच्चिन्मया।। (ह.प्र. 1.18)
10. श्रीआदिनाथमत्स्येन्द्र शाबरानन्द भैरवा:।
धीरङ्गीमीनगोरक्षविरूपाक्षबिलेशया:।।
मन्थानो भैरवो योगी सिद्धिर्बुद्धश्च कन्थडि:।
कोरण्टक: सुरानन्द: सिद्धिपादश्च चर्पटि:।।
कानेरी पूज्यपादश्च नित्यनाथो निरंजन:।
कपाली बिन्दुनाथश्च काकचण्डीश्वराह्वय:।।
अल्लाम: प्रभुदेवश्च घोडाचोली च टिण्टिणि:।
भानुकी नारदेवश्च खण्ड: कापालिकस्तथा।।
इत्यादयो महासिद्धि हठयोगप्रभावत:।
खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते।। (ह.प्र. 1/5-9)
11. अत्याहार: प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रह:।
जनसंगश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति।।
उत्साहात् साहसार्ऽयात्तत्वज्ञानाच्च निश्चयात्।
जनसंगपरित्यागात् षड्भिर्योग: प्रसिद्धङ्गति।। (ह.प्र. 1/15-16)
12. वर्ह्निस्त्रीपथिसेवानामादौ वर्जनमाचरेत। (ह.प्र. 1.61)
13. क्रियायुक्तस्य सिद्धि: स्यादक्रियस्य कथं भवेत्।
न शास्त्रापाठमात्रोण योगसिद्धि: प्रजायते।। (ह.प्र. 1.65)
14. चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।। (ह.प्र. 2.2)
15. धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चौतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।। (ह.प्र. 2.22)
16. सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिाका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भका:।। (ह.प्र. 2.44)
17. इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम्।
आदिनाथोदितं दिव्यमष्टैश्वर्यप्रदायकम्।।
वल्लभं सर्वसिद्धिनां दुर्लभं मरुतामपि।। (ह.प्र. 3.7)
18. पृ. 8, हठयोग के सिद्धान्त (प्रश्नपत्रा द्वितीय, इकाई चतुर्थ), प्रो. डा. ईश्वर भारद्वाज, ह.प्र. 36
19. पृ. 2, प्रस्तावना, स्वामी दिगम्बर जी और डा. पीताम्बर झा, कैवल्यधाम, लोनावाला।
20. पृ. 4, हठयोग के सिद्धान्त (प्रश्नपत्रा द्वितीय, इकाई प्रथम), प्रो. डा. ईश्वर भारद्वाज
21. आरम्भश्च घटश्चौव तथा परिचयोऽपि च।
निष्पत्ति: सर्वयोगेषु स्यादवस्थाचतुष्टयम्।। (ह.प्र. 4.69)
22. पृ. 24-25, ब्रह्मानन्दकृत 'हठप्रदीपिका ज्योत्स्ना' आलोचनात्मक संस्करण (हिन्दी), कैवल्यधाम, लोनावाला।
23. पृ. 5, प्रस्तावना, स्वामी दिगम्बर जी और डा. पीताम्बर झा, कैवल्यधाम, लोनावाला।

दृष्टिकोण DRISHTIKON

India's Leading Multidisciplinary Referred Hindi Language Journal

UGC CARE LISTED

Certificate Of Publication

This is to certify that Mr./Ms. रमेश कुमार (शोधछात्र, योग विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड)

डॉ० अरुण कुमार सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड), in recognition of Publication of the Paper entitled यौगिक परम्परा में योगी स्वात्माराम

Published in Drishtikon Journal

Vol. 13 Issues 2 in मार्च अप्रैल 2021

Impact Factor 5.051 ISSN 0975-119X

Editor

रामायण में ज्ञानयोग का वर्णन

उमेश कुमार
शोधछात्र, योग विभाग

हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय,

उत्तराखण्ड

डा. अरुण कुमार सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
उत्तराखण्ड

ज्ञानमार्ग की प्रक्रिया में आगे बढ़ने के लिए ज्ञानयोग की साधना आवश्यक है ज्ञान के साधन ज्ञान की प्रक्रिया तक ले जाने में सहायक हैं। अतः ज्ञान के इन साधनों को ज्ञानयोग के सहायक तत्त्व के रूप में देखा जाता है। वेदान्त के अनुसार ज्ञानमार्ग के ये सहायक साधन मुख्यतः चार हैं। इन्हें साधन चतुष्टङ्ग भी कहा जाता है। ये साधन विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व हैं। वाल्मीकि रामायण में इनका वर्णन अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है –

विवेक –

अयोध्याकाण्ड में भरत, श्रीराम को अयोध्या चलकर राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना करते हैं। श्रीराम भरत को उपदेश करते हुए कहते हैं कि जैसे पके हुए कहते हैं कि जैसे पके हुए पफलों को पतन के अतिरिक्त और किसी से भय नहीं है। जैसे सुदृढ़ खम्भेवाला मकान भी पुराना होने पर गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य जरा और मृत्यु के वश में पड़कर नष्ट हो जाता है।[1] जो रात बीज जाती है, वह लौटकर नहीं आती। जैसे यमुना जल से भरे हुए समुद्र की ओर जाती है, उधर से लौटती नहीं।[2] दिन–रात लगातार बीत रहे हैं और इस संसार में सभी प्राणियों की आयु का तीव्र गति से नाश कर रहे हैं। ठीक वैसे ही जैसे सूर्य की किरणें जल को शीघ्रतापूर्वक सोखती रहती है।[3] मृत्यु साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और बहुत बड़े मार्ग की यात्राा में भी साथ ही जाकर वह मनुष्य के साथ ही लौटती है।[4] शरीर में झुर्रियाँ पड़ गयीं, सिर के बाल सफेद हो गये। फिर जरावस्था से जीर्ण हुआ मनुष्य कौन–सा उपाय करके मृत्यु से बचने के लिए अपना प्रभाव प्रकट कर सकता है?[5] 'लोग सूर्यादय होने पर प्रसन्न होते हैं, सूर्यास्त होने पर भी खुश होते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि प्रतिदिन अपने जीवन का नाश हो रहा है।[6] जैसे महासागर में बहते हुए दो काठ कभी एक–दूसरे से मिल जाते हैं और कुछ काल के बाद अलग भी हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्राी, पुत्रा कुटुम्ब और धन भी मिलकर बिछुड़ जाते हैं, क्योंकि इनका वियोग अवश्यम्भावी है।[7]

इस संसार में कोई भी प्राणी यथासमय प्राप्त होने वाले जन्म–मरण नहीं कर सकता। इसलिए जो किसी मरे हुए व्यक्ति के लिए बार–बार शोक करता है, उसमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि वह अपनी ही मृत्यु को टाल सके।[8] जैसे आगे जाते हुए यात्रियों अथवा व्यापारियों के समुदाय से रास्ते में खड़ा हुआ पथिक यों कहे कि मैं भी आप लोगों के पीछे–पीछे आउफँगा और तदनुसार वह उनके पीछे–पीछे जाये, उसी प्रकार हमारे पूर्वज पिता–पितामह आदि जिस मार्ग से गये हैं, जिस पर जाना अनिवार्य है तथा जिससे बचने का कोई उपाय नहीं है, उसी मार्ग पर स्थिर हुआ मनुष्य किसी और के लिए शोक कैसे करें?[9] जैसे नदियों का प्रवाह पीछे नहीं लौटता, उसी प्रकार दिन–दिन ढ़लती हुई अवस्था पिफर नहीं लौटती है।

उसका क्रमशः नाश हो रहा है, यह सोचकर आत्मा को कल्याण के साधनभूत धर्म में लगावें, क्योंकि सभी लोग अपना कल्याण चाहते हैं।[10] तुलसीदास जी मानस में कहते हैं –

''ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना।''[11]

''बिनु विवेक संसार–घोर–निधि पार न पावे कोई।''[12]

अर्थात् विवेक के बिना संसार–सागर में कोई पार नहीं पा सकता। श्रुति में भी कहा गया है –

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्।[13]

अजो नित्यः शाश्वतः।[14]

एकं सद् विप्रा बहुध वदन्ति।[15]

वैराग्य –

विवेक के पश्चात् वैराग्य का होना सम्भव है। वैराग्य ज्ञान का दूसरा साधन है। शंकर के शब्दों में वैराग्य का तात्पर्य है लौकिक भोग–ऐश्वर्य से लेकर पारलौकिक दिव्य स्वर्गीय सुख भोगों को भी अनित्य एवं क्षणभंगुर समझकर उनके प्रति भोग इच्छा का पूर्णतया परित्याग कर देना वैराग्य कहा गया है।[16] अर्थात् इस लोक की भोग–विलास सम्बन्धी सभी सामग्री कर्मजन्य तथा अनित्य है।

अयोध्याकाण्ड में श्रीराम ने वल्कल–वस्त्रा धरण कर राजा दशरथ से विनीत होकर कहा – ''राजन्। मैं भोगों का परित्याग कर चुका हूँ। मुझे जंगल के फल–मूलों से जीवन–निर्वाह करना है। जब मैं सब ओर से आसक्ति छोड़ चुका हूँ तब मुझे सेना से क्या प्रयोजन है?[17] जो श्रेष्ठ गजराज दान करके उसके रस्से में मन लगाता है – लोभवश रस्से को रख लेना चाहता है, वह अच्छा नहीं करता। क्योंकि उत्तम हाथी का त्याग करने वाले पुरुष को उसके रस्से में आसक्ति रखने की क्या आवश्यकता है?''[18]

सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का रानियों सहित राजा दशरथ के पास जाकर वनवास के लिए विदा माँगना, राजा का शोक और मूर्च्छा, श्रीराम का उन्हें समझना – 'मुझे न तो राज्य की, न सुख की, न पृथ्वी, न इन सम्पूर्ण भोगों की, न स्वर्ग की और न जीवन की ही हच्छा है।[19] देखे और सुने गये विषयों के प्रति वितृष्णा इनके प्रति भोगासक्ति न होना तथा इन विषय–भोगों के प्रति इच्छा रहित होना वैराग्य है।[20] संसार के भोग्य पदार्थों में उपेक्षा हो जाना वैराग्य है क्योंकि जब तक इनमें दोष दर्शन नहीं होते, तब तक वैराग्य का उदय होना कठिन होता है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं – ''जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।''[21] अर्थात् मृत्यु, जरा ;बुढ़ापाद्ध, व्याधि ये सभी दुःखदायी हैं। इस प्रकार का दोष देखने में वैराग्य उदय होता है –

''ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।''[22]

इन्द्रियों के स्पर्श से अनुभव होने वाले जो भी भोग हैं, वे सबके सब दुःख के स्रोत हैं। ये सभी आदि और अन्त वाले होने के कारण नाशवान् हैं। इसलिए विवेकवा् लोग इसमें नहीं रमते। अर्थात् जो विवेकवान् हैं वे प्रत्येक स्थिति में विषय–भोगों से दूर रहते हैं। वैराग्य की सच्ची साधना बुध ने की थी। जिन्होंने सारे राजसी सुखों के बीच रहकर भी यही निष्कर्ष निकाला – ''सब्बं दुक्खम्।'' सब कुछ दुःख है। बुध के अनुसार ''जन्म में दुःख

है, प्रिय से वियोग में दुःख है, अप्रिय से संयोग में दुःख है।'' इस प्रकार का चिन्तन करने से वैराग्य का उदय होता है। तुलसी दर्शन मीमांसा के अनुसार ''विषय भोगों के प्रति जुगुप्सा व्यवहार वैराग्य है।''[23]

षट्सम्पत्ति –

साधनों के इस क्रम तीसरा साधन षट्सम्पत्ति है। षट्सम्पत्ति के अन्तर्गत छः साधनों को रखा जाता है – शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधन, श्रधा।[24]

अयोध्याकाण्ड के तैंतीसवें सर्ग में षट्सम्पत्ति ;शम, दम, आदिद्ध का वर्णन मिलता है। जब श्रीराम पिता के दर्शन के लिए कैकेयी के महल में जाते हैं तो उन्हें दुःखी नगरवासियों के मुख से तरह–तरह की बातें सुनायी पड़ती हैं – क्रूरता का अभाव, दया, विद्या, शील, दम ;इन्द्रिय संयमद्ध और शम ;मनोनिग्रहद्ध ये छः गुण नरश्रेष्ठ श्रीराम को सदा ही सुशोभित करते हैं।[25]

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

''असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते।।''[26]

हे महाबाहो! यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह मन बड़ा चंचल है तथा इसका निग्रह कठिन है परन्तु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है। उपरति का तात्पर्य है – विरति हो जाना। वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर भी उसके प्रति उदासीन भाव रहना ही उपरति है। मन इन्द्रियों से हटाकर सब कामनाओं से शून्य हो जाना भी उपरति है।''[27] अयोध्याकाण्ड में श्रीराम का राज्याभिषेक में आसक्ति का न होना उपरति का उदाहरण है। भरत जी के द्वारा राज्य का त्याग भी उपरति का ही उदाहरण है – भरत जी, श्रीरामचन्द्र जी से कहते हैं – 'अब आप अपने दास स्वरूप मुझ भरत पर कृपा कीजिये और इन्द्र की भाँति आज ही राज्य ग्रहण करने के लिए अपना अभिषेक कराइये।'[28] दूसरों को मान देने वाले रघुवीर! आप ज्येष्ठ होने के नाते राज्य–प्राप्ति के क्रमिक अधिकार से युक्त हैं, न्यायतः आप ही राज्य ग्रहण करें और अपने सहृदयों को सपफल–मनोरथ बनावें।[29] ''मैं इन समस्त सचिवों के साथ आपके चरणों में मस्तक रखकर यह याचना करता हूँ कि आप राज्य ग्रहण करें। मैं आपका भाई, शिष्य और दास हूँ। आप मुझ पर कृपा करें।[30] भरत जी अपने धर्म में तत्पर रहकर राज्य भोग त्याग कर रहे हैं। श्रीराम भी अपना धर्म निभा रहे हैं। वे भरत से कहते हैं – 'भाई! तुम्हीं बताओ उत्तम कुल में उत्पन्न सत्त्व गुण सम्पन्न, तेजस्वी और श्रेष्ठ व्रतों का पालन करने वाला मेरे जैसा मनुष्य राज्य के लिए पिता की आज्ञा का उल्लंघन रूप पाप कैसे कर सकता है?[31] तुम्हें अयोध्या में रहकर समस्त जगत् के लिए आदरणीय राज्य प्राप्त करना चाहिए और मुझे वल्कल वस्त्रा धरण करके दण्डकारण्य में रहना चाहिए।[32]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में ज्ञानयोग के बहिरंग साधनों का वर्णन प्राप्त होता है। इसी क्रम में अंतरंग साधनों को भी महर्षि ने वर्णित किया है।

श्रवण –

जिज्ञासु गुरु से वाक्य या श्रुति को सुनना श्रवण कहलाता है। वेदान्त सार के अनुसार – श्रवणं नाम षघ्विधलिंगैरशेषवेदान्तानामद्वितीये वस्तुनि तात्पर्याविधरणम्।[33]

सीता जी माता कौशल्या से कहती है– 'आर्ये! मैने श्रेष्ठ स्त्रियों–माता आदि के मुख से नारी के सामान्य और विशेष धर्मो का श्रवण किया है। इस प्रकार पातिव्रत्य का महत्त्व जानकर भी मैं पति का क्यों अपमान करूँगी? मैं जानती हूँ कि पति ही पत्नी का देवता है।'[34]

अयोध्या से डेढ़ योजन दूर जाकर सरयू के दक्षिण तट पर विश्वामित्रा ने मधुर वाणी में राम को सम्बोधित किया और कहा! 'वत्स राम! अब सरयू के जल से आचमन करो। इस आवश्यक कार्य में विलम्ब न हो।[35] बला और अतिबला नाम से प्रसि(इस मन्त्रा समुदाय को ग्रहण करो।[36] इन दोनों विद्याओं के प्राप्त हो जाने पर कोई तुम्हारी समानता नहीं कर सकेगा क्योंकि ये बला और अतिबला नामक विद्याएँ सब प्रकार के ज्ञान की जननी हैं।[37]

बालकाण्ड के पैंतीसवें सर्ग में प्रसंग आता है कि श्रीराम ने प्रसन्नचित होकर विश्वामित्रा जी से पूछा।[38] 'भगवन्! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि तीन मार्गों से प्रवाहित होने वाली नदी ये गंगाजी किस प्रकार तीन लोंकों में घूमकर नदों और नदियों के स्वामी समुद्र में जा मिली हैं।[39] श्रीराम के इस प्रश्न द्वारा प्ररित हो महामुनि विश्वामित्रा ने गंगाजी की उत्पत्ति की कथा कहनी आरम्भ की तो श्रीराम प्रेमपूर्वक श्रवण करने लगे।[40]

मनन –

ब्रह्माविद गुरु के मुख के ब्रह्म के विषय में श्रवण किये विषय को तर्क–वितर्क के द्वारा निश्चय करना मनन कहलाता है। मनन से अस्पष्ट विषय भी स्पष्ट हो जाता है तथा संशय समाप्त हो जाता है। अतः ज्ञान के लिए श्रवण के बाद मनन को आवश्यक माना गया है। रामायण में मारीच ने मनन किया कि श्रीराम के बाण से मैं बच गया हूँ, अतः इसे नया जीवन ही मानकर संन्यास लेकर दुष्कर्मों का त्याग करके स्थिर चित्त ;ध्यान करता हुआ योगाभ्यास में रहकर तपस्या का जीवन यापन करूँ।[41] सीता के वियोग से दुःखी श्रीराम को देखकर लक्ष्मण उन्हें मनन के लिए प्रेरित करते हैं कि पौरुष को भूल पाने से कोई कार्य नहीं होगा। योग का आश्रय लेकर मनन करो जिससे सारी चिन्ता मिट जाएगी।[42] इस प्रकार अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

निदिध्यासन– श्रवण–मनन के पश्चात् ध्यान की स्थिति की आवश्यकता होती है। जिसे 'निदिध्यासन' कहा जाता है। ध्यान ;निदिध्यासनद्ध के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। श्रीराम माता को राजतिलक का समाचार देने जाते हैं तो कौशल्या ध्यान में आँखें बंद किए हुए थी।[43] पुष्य नक्षत्रा के योग में पुत्रा के युवराज पद पर अभिषिक्त होने का समाचार पाकर मंगलकामना में नारायण का ध्यान कर रही थी।[44]

साक्षात्कार –

निदिध्यासन के पश्चात् साक्षात्कार की स्थिति बनती है। विश्वामित्रा के द्वारा अनेक वर्षों तक तपस्या करके साक्षात्कार की स्थिति प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है।[45] सहस्त्रों वर्षो तक मौनव्रत रखकर तपस्या में लगे रहे।[46] जब विश्वामित्रा की सेना तथा सभी पुत्र नष्ट हो गए तो महादेव की प्रसन्नता के लिए उन्होंने तप किया।[47]इस प्रकार के उदाहरण अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं।

ज्ञानयोग की साधना का वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर वर्णन मिलता है। यह साधना जीवन मूल्यों के साथ व्यक्ति को इस संसार–सागर से पार उतारने वाली है।

---

1. यथागारं दृढस्थूणं जीर्ण भूत्वापसीदति।
   तथावसीदन्ति नराः जरामृत्युवशंगताः।। वा.रा.अयो. 105/18
2. अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तत।
   यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम्।। वा.रा.अयो. 105/19
3. अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
   आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः।। वा.रा.अयो. 105/20

4. सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते।। वा.रा.अयो. 105/22
5. गात्रोषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरूहाः।
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत्।। वा.रा.अयो. 105/23
6. नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमिते{हनि।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम्।। वा.रा.अयो. 105/24
7. यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन।।
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च।
समेत्य व्यवधवन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः।। वा.रा.अयो. 105/26, 27
8. नात्रा कश्चिद् यथाभावं प्राणी समतिवर्तते।
तेन अस्मिन् न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः।। वा.रा.अयो. 105/28
9. यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति।
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैर्ध्रुवः।
तमापन्नः कथं शोचेद् यस्य नास्ति व्यतिक्रमः।। वा.रा.अयो. 105/29, 30
10. वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः।। वा.रा.अयो. 105/31
11. मा.अ. 16/1
12. वि. 115/5
13. मुण्डक. 1/1/6
14. कठ. 2/18
15.)क् 1/164/49
16. इहामुत्रापफलभोगविरागस्तदनन्तरम्। विवेक चूडामणि, 19
17. त्यक्तभोगस्य मे राजन् वने वन्येन जीवतः।
किं कार्यमनुयात्रोण त्यक्तसर्धैस्य सर्वतः।। वा.रा.अयो. 37/2
18. यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनवः।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कु×जरोत्तमम्।। वा.रा.अयो. 37/3
19. नेवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मेदिनीम्।
नैव सर्वानिमान् कामान् न स्वर्गं न च जीवितुम्।। वा.रा.अयो. 34/47
20. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्। पा.यो.सू. 1/15
21. गीता 13/8
22. गीता 5/2
23. तुलसी दर्शन मीमांसा, डा.उदयभानु सिंह, पृ. 251
24. शमदमोपरतितितिक्षासमाधनश्र(ख्याः। वेदान्तसार, पृ. 6
25. आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्।। वा.रा.अयो. 33/12
26. गीता 6/35
27. योग विज्ञान, स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती, पृ. 190
28. तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि।
अभिषि×चस्व चाद्यैव राज्येन मद्यवानिव।। वा.रा.अयो. 101/8
29. तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद।
राज्यं प्राप्नुहि र्ध्मेण सकामान् सुहृदः कुरु।। वा.रा.अयो. 101/10
30. एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचिता मया।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि।। वा.रा.अयो. 101/12
31. कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधे जनः।। वा.रा.अयो. 101/16
32. त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम्।
वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा।। वा.रा.अयो. 101/23
33. वेदान्तसार, पृ. 107
34. सहमेवंगता श्रेष्ठा श्रुतर्ध्मपरावरा।

आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिाया भर्ता हि दैवतम्।। वा.रा.अयो. 39/31
35. अध्यर्ध्योजनं गत्वा सरÕवा दक्षिणे तटे।।
रामेति म्धुरां वाणी विश्वामित्रोऽ्भ्यिभाषत।
गृहाण वत्स सलिलं मा भूत कालस्य पर्ययः।। वा.रा.बाल. 22/11,12
36. मन्त्राग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा। वा.रा.बाल. 22/13
37. एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत् सदृशस्तव।
वला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।। वा.रा.बाल. 22/17
38. सम्प्रहृष्टमना रामो विश्वामित्रामथब्रवीत्। वा.रा.बाल. 35/11
39. भगव×छ्रोतुमिच्छामि गंगा त्रिपथगां नदीम्।
त्रौलोक्यं कथामाक्रम्य गता नदनदीपतिम्।। वा.रा.बाल. 35/12
40. चोदितो रामवाक्येन विश्वामित्राो महामुनिः।
वृ(ि जन्म च गंगा वक्तुमेवोपचक्रमे।। वा.रा.बाल. 35/13
41. शरेणमुक्तो रामस्य कथंचित् प्राप्य जीवितम्।
इह प्रव्रजितो युक्तस्तापसोऽ्हं समाहितः।। वा.रा.अर. 39/14
42. किमार्थ, कायस्य वंशगतेन किमात्मपौरुष्य पराभवेन्।
अयं ह्रिया संह्रियत समाधि किमत्रा योगेन निवर्तते न।। वा.रा.कि. 30/16
43. तस्मिन्कालेऽ्पि कौशल्या तस्थावामीलितेक्षणा। वा.रा.अयो. 4/32
44. श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रास्य यौवराज्येऽ्भिषेचनम्।
प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम्।। वा.रा.अयो. 4/33
45. तपस्तेपे सुदारुणम्। वा.रा.बाल. 65/2
46. मौनं वर्षसहस्रस्य कृत्वा व्रतमनुत्तमम्।
चकारा प्रतिमं राम तपः परम दुष्करम्।। वा.रा.बाल. 65/2
47. महादेव प्रसादार्थं तपस्तेपे महातपाः। वा.रा.बाल. 55/72

Certificate of Publication

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS (IJRAR) | E-ISSN 2348-1269, P- ISSN 2349-5138

An International Open Access Journal

The Board of

International Journal of Research and Analytical Reviews (IJRAR)

Is hereby awarding this certificate to

Umesh kumar

In recognition of the publication of the paper entitled

RAMAYANN MEIN GYANYOG KA VARNNAN

Published In IJRAR (www.ijrar.org) UGC Approved (Journal No : 43602) & 5.75 Impact Factor

Volume 5 Issue 3 , Date of Publication:September 2018 2018-09-08 03:12:25

PAPER ID : IJRAR19D1399

Registration ID : 222785

R.B.Joshi

EDITOR IN CHIEF

UGC and ISSN Approved - International Peer Reviewed Journal, Refereed Journal, Indexed Journal, Impact Factor: 5.75 Google Scholar

IJRAR | E-ISSN 2348-1269, P- ISSN 2349-5138

दर्शन शास्त्र के स्तम्भत्रय (ज्ञानयोग तथा ज्ञानोपलब्धि के विशेष सन्दर्भ में)

उमेश कुमार

शोधछात्र, योग विभाग हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

डॉ० अरुण कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

प्रायः सभी दर्शनों में दर्शन के आधारभूत तीन स्तम्भ दृष्टिगोचर होते हैं - तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा तथा आचार मीमांसा अद्वैतवेदान्त में एक मात्र ब्रह्म ही तत्व है। ब्रह्म से भिन्न समतल दृश्यमान् जगत् मिथ्या एवं भ्रामक कल्पना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होने से उसकी परमार्थ तत्व में गणना नहीं की जाती किन्तु प्रमेय होने से उसे व्यावहारिक तत्व माना जाता है। वेदान्ती अपने अद्धैततत्व को सिद्ध करने के लिए श्रुतियों का; अनुश्रुति और तर्कयुक्त प्रमाणों का सहारा अथवा आश्रय लेते हैं। एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्मः, नेह नानास्ति किंचनः - इत्यादि।

अद्धैतवाद में अद्वितीय, नित्य, निर्विकल्पक, निरूपाधिक, निर्विकार, व्यापक, चैतन्य तत्व का नाम ब्रह्म है। अमर कोशकार ने भी 'ब्रह्म' शब्द के तीन अर्थ किये हैं - ''वेदास्तत्वं तपो ब्रह्म'' वेदान्त दर्शन में ब्रह्म शब्द तत्व अर्थ में प्रयुक्त होता है।

वेदान्तियों ने एकमात्रब्रह्मतत्व को ही सत् रूप से माना है। ब्रह्मातिरिक्त जो कुछ प्रतीत होता है वह केवल मिथ्या, मायिक, भ्रम या कल्पना मात्रहोने से परमार्थतः तत्व रूप से स्वीकार नहीं किया गया।

तब प्रश्न उठता है कि एक ब्रह्म ही तत्व है तो ब्रह्मातिरिक्त माया या ईश्वर शक्ति अविद्या या जीव की उपाधि ईश्वर, जीव, पंचमहाभूत, जगत्, शरीरका, आत्मा में अनात्म का और अनात्मा में आत्मा का अध्यास निरूपण अर्थात् - 1. धर्माध्यास, 2. धर्मसहितधर्मी का अध्यास, 3. सम्बन्धाध्यास, 4. सम्बन्ध सहित सम्बन्धी का अध्यास, 5. अन्यतराध्यास और अन्योन्याध्यास और जगत् के कारण में अंशतः माया आदियों का प्रतिपादन भी वेदान्तियों ने किया है। अतः इनको भी तत्व माना जाय; केवल एक ब्रह्म को ही तत्व क्यों माना जाय?

इसके उत्तर में वेदान्तियों का कहना है कि एकमात्रब्रह्म तत्व होने पर भी ब्रह्मातिरिक्त जो प्रतीति हो रही है उसे मुमुक्षु को और अन्य प्रतिवादियों को समझाने के लिए ही ब्रह्मातिरिक्त अतात्विक तत्वों की मीमांसा की गई है। जिसे वस्तुतः तत्व का बोध हो चुका है, उसके लिए ब्रह्मातिरिक्त जो अज्ञानियों को तत्व के रूप में प्रतीत हो रहे हैं, उन की मीमांसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

दृष्टिगोचर होने वाला संसार और उसके समस्त व्यवहार एकमात्रअनुभूति के आश्रित हैं। इसी अनुभूति से स्वतः सिद्ध आत्मा की सत्ता अनुभूत होती है। क्योंकि प्रमेय के अनुभव के आभ्यन्तर चेतन तत्व की सत्ता तो स्वंय सिद्ध ही है। आत्मा कहो या चेतन तत्व कहो उसकी ज्ञाता रूप से उपलब्धि के विना प्रमेय वस्तुओं का ज्ञान सम्भव नहीं है। प्रत्येक प्रमेय के अनुभव की जो प्रक्रिया है; उसमें अनुभव-कर्ता को अपनी सत्ता का अनुभव अवश्यमेव होता ही है।

आद्य शंकराचार्य जी कहते हैं कि प्रमाणादि निखिल व्यवहारों का आश्रय तो आत्मतत्व या ब्रह्म तत्व ही है। आत्मा-ब्रह्म, चैतन्य, ज्ञान, आदि ब्रह्म के पर्याय होने से आत्म तत्व शब्द प्रयोग किया गया है; क्योंकि सांसारिक समस्त व्यवहारों के पूर्व ही आत्मा की सिद्धि है। आत्माकातो निराकरण नहीं होता; निराकरण किसी का होता है तो वह आगन्तुक वस्तुओं का ही होता है।

आत्म तत्व तो ज्ञान रूप है और ज्ञातस्य भी। वस्तुतः ज्ञाता - ज्ञान से भिन्न नहीं है। ज्ञेय पदार्थ के भाव से ज्ञान ही ज्ञाता रूप से प्रतीत होता है, किन्तु ज्ञेय के अभाव में ज्ञाता की कल्पना ही नहीं होती।[1] जब संसार की ज्ञेय रूप से उपस्थिति होती है तब ज्ञान की भी ज्ञाता रूप से प्रतीति होने लगती है, उसके बिना नहीं। इसी बात को समझने के लिए ज्ञान मीमांसा की आवश्यकता पड़ती है।

ज्ञानमीमांस से पूर्व आचार मीमांसा और उसको उपयोग के विषय में थोड़ा विचार करके ज्ञान मीमांसा और उसकी उपयोगिया या स्थान पर प्रकाश डालेंगे।

आचार मीमांसा -

आचार का लक्षण कुछ विद्वानों ने इस प्रकार किया है - 1. आचारः त्रायीकर्मानुष्ठानम्, 2. नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मो के अनुसार अपनी दिनचर्या बनाने का नाम आचार कहलाता है।

नित्यकर्म - जिस कर्म के न करने से मनुष्य को प्रत्यवाय लग जाता है, उसे नित्यकर्म कहते हैं। सन्ध्यावन्दनादि नित्य कर्म हैं। वेदान्तमन्दारमाल में भी कहा गया है। तथा वेदान्तसार में भी कहा है कि - नित्यानि करणे प्रत्यवायसाधनानि सन्ध्या वन्दनादीनि। पुत्रजन्मादिनिमित्तक जातेष्टि आदि नैमित्तिक कर्म हैं। ''नैमित्तिकानि पुत्राजन्मावनुबन्धीनि जातेष्ट्यादीनि। अर्थात् पुत्रजन्मादि निमित्त को लेकर जातेष्टि आदि जिन कर्मों का विधान है वह नैमित्तिक कर्म हैं। वह भी नित्य कर्म के समान ही हैं। न करने पर प्रत्यवायकरण है।

''निमित्ते पुत्रजन्मादी जातेष्ट्यादि विधीयते।

नैमित्तिकं तु तत्कर्म नित्यवत् तत्व गण्यते॥''

काम्यकर्म - अपने अभीष्ट स्वर्गादि का साधन ज्योतिष्टोमादि काम्य कर्म हैं।

स्वर्गादिसाधनं काम्यं ज्योतिष्टोमादिकं तथा।

निषिद्धं बह्महत्यादि नरकादिप्रदायकम्॥

स्वर्गादि साधन कर्म और ज्योतिष्टोमादियागादि काम्य कर्म कहलाते हैं। ब्रह्म-हत्यादि नरकादिसाधन कर्म, निषिद कर्म हैं। इस प्रकार आचार के प्रथम लक्षण का भाव अथवा अभिप्राय है।

द्वितीय लक्षण है - ''धर्माविरुद्धशारीरिक व्यवहार;'' - अर्थात् धर्मशास्त्रके अनुसार दैनिक शारीरिक व्यवहार करने का नाम भी आचार कहलाता है। यह भी नित्य-नैमित्तिक और काम्य कर्मादि युक्त है। पाप क्षय के साधन चान्द्रायण व्रतादि प्रायश्चित कर्म हैं। सगुण ब्रह्मविषयक ध्यानरूप मानस व्यापार; जैसे शाण्डिल्यविद्यादि उपासना कर्म। यदि कहो कि पापरहित हो तो प्रायश्चित्त कर्मादि क्यों करना? ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि उसका भी बुद्धि शुद्धि रूप पफल है। मुमुक्षुओं को वह भी अवश्य करना चाहिए। उपासना का पफल चित्त की एकाग्रता ही परम पफल है। ''सर्व खत्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत'' - इत्यादि सगुणब्रह्म विषयक शाण्डिल्यविद्यादि उपासना है। इसे सर्वसम्मत मानस कर्म भी स्वीकार किया है। अर्थात् निष्काम कर्म करने वाले साधक को नित्यादि कर्मों का पफल चित्तशुद्धि, और कामना करने वालों को पितृलोक-स्वर्गलोकादि की प्राप्ति है। स्वर्गादि की प्राप्ति अवान्तर पफल में गिनी जाती है।

मुमुक्षु जब नित्यनैमित्तिक कर्म और शाण्डिल्यादिविद्यारूप उपासना से युक्त साधनचतुष्टय सम्पन्न हो जाता है तब वह तत्वमीमांसा का अधिकारी बन जाता है। आप कहेंगे कि साधनचतुष्टय क्या है? साधनचतुष्टय भी अद्वैत दर्शरन की आचारमीमांसा है। वह है विवेक, वैराग्य, शमादिषट्कसम्पत्ति और मुमुक्षुता।

अपरोक्ष अनुभूति में साधनचतुष्टय और उसकी प्राप्ति का उपाय भी बतलाया गया है। वह इस प्रकार है - अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म और तपस्या-द्वारा श्री हिर को प्रसन्न करने से मनुष्यों को वैराग्यादि साधनचतुष्टय की प्राप्ति होती है।

विवेक- ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है अथवा आत्मस्वरूप नित्य है और दृश्य उसके विपरीत 'अनित्य' है ऐसा जो दृढ़निश्चय है वहीं नित्यानित्य वस्तु का विवेक कहलाता है।

वैराग्य - ब्रह्मलोक से लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त विषयों में काकविष्ठा के समान घृणितबुद्धि होना ही निर्मल वैराग्य कहलाता है।

शमादिषटक्सम्पत्ति शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान इन सब को शमादिषटक सम्पत्ति कहते हैं।

शम - वासनाओं का सर्वदा त्याग करना शम कहलाता है।

दम - बाह्यवृत्तियों को रोकना या उनके ऊपर विजय पाना दम कहलाता है।

उपरति- वृत्ति का बाह्यविषयों का आश्रय न करना अथवा विषयों से पराङ्मुख होना ही उपरति है।

तितिक्षा - विपरीत या हानि की चिन्ता न करना उस के विषय में शोक भी न करना बल्कि अनुकूलता प्रतिकूलता में समभाव से रहना ही तितिक्षा कहलाती है।

श्रद्धा- शास्त्रऔर गुरुवाक्यों में विश्वास या सत्यत्त्व बुद्धि रखना ही आचार्यों ने श्रद्धा कहा है।

समाधान - अपनी बुद्धि या चित्त सब प्रकार से शुद्ध ब्रह्म में ही सदा स्थिर या एकाग्र होना ही समाधान कहलाती है।

मुमुक्षुता - देहादि से अहंकार पर्यन्त जितने भी अज्ञान से कल्पितबन्धन हैं उनको अपने स्वरूप या तत्वज्ञान से त्यागनै की इच्छा करना ही मुमुक्षता है। अथवा इस भवसागर के बंधन से कब और किस तरह मुक्ति मिलेगी ऐसी जो निश्चयात्मक बुद्धि है उसी को मुमुक्षुता कहना चाहिए।

नित्य-नैमित्तिक-काम्यकर्म से और चित्तशुद्धि के लिए की गई उपासना से युक्त पुरुष साधनचतुष्टय से सम्पन्न हो जाने पर वह सद वस्तु की प्राप्ति या ज्ञान के लिए शास्त्रनिर्देश के अनुसार जब सद्गुरु की शरण लेता है तब श्रोत्रिाय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु जिज्ञासु शिष्य को संसार के मिथ्यात्त्व एवं परमात्मा के तत्वज्ञान का उपदेश देने के लिए, अध्यारोप एवं अपवाद सिद्धांत के माध्यम से समझाते हुए तत्वमस्यादि महावाक्यों का उपदेश करते है। सद्गुरु द्वारा तत्वमस्यादि वाक्यों का उपदेश शिष्य श्रवण करता है। उसी समय उसे ब्रह्मज्ञान हो जाता है; परन्तु उसके दृढ़ता के लिए मनन और निदिध्यासन दृढ़ता होने तक करना होता है।

यह श्रवण-मनन और निदिध्यासन आचार मीमांसा की चरम सीमा है जब तक श्रवण के किये हुए तत्वज्ञान की दृढता के लिए मनन और निदिध्यासन नहीं किया जाता तब तक श्रवण किये हुए महावाक्यों के उपदेशों पर धीरे धीरे पुनः आवरण और विक्षेप शक्ति अपना प्रभाव डालने लगती है।[1]

जैसे जलाशय के जल पर शैवालादि आवरण डालते हैं उन्हें हाथों से हटाने पर भी धीरे-धीरे पुनः जल पर आच्छादित होने लगते हैं, जब तक कि उन्हें सम्पूर्ण रूप से दूर नहीं किया जाता। ठीक उसी प्रकार श्रवण किये हुए महावाक्यों के ज्ञान का मनन और निदिध्यासन जब तक नहीं किया जाता तब तक

आवरण और विक्षेप शक्ति भी अपने स्वभाव से आच्छादित करना नहीं छोड़ती। इसलिए श्रवण के पश्चात् तत्व की दृढ़ता के लिए मनन और निदिध्यासन की आवश्यकता होती है।

जिस प्रकार दर्शन के तत्वमीमांसा और आचारमीमांसा स्तम्भ हैं उसी प्रकार ज्ञानमीमांसा भी दर्शन का एक स्तम्भ है और उसका स्थान आचार और तत्वमीमांसा के मध्यस्थ स्थित दूरी को समाप्त कर आचार का पर्यवसान या आचार मीमांसा को तत्वमीमांसा के रूप में परिणत करना या तत्व में स्थित करना है। क्योंकि केवल नित्य-नैमित्तिकादि कर्म, उपासना और साधनचतुष्टय सम्पन्न आचार से सीधा तत्व मीमांसा का ज्ञान नहीं होता। अर्थात् ब्रह्म तत्व का बोध नहीं होता, केवल अधिकारी ही रहता है। अधिकारी व्यक्ति को तत्वरूप प्रमेयों की प्रमा तो ज्ञान मीमांसा से ही होती है। जब तक प्रमा नहीं होगी तब तक मानव जीवन का मोक्ष रूप जो लक्ष्य है वह सिद्ध नहीं होगा। उस लक्ष्य को पाने के लिए या साधने के लिए प्रमा का जो करण रूप ज्ञान मीमांसा है उसका होना अत्यन्त आवश्यक है। अत: ब्रह्मतत्व की प्रमा के लिए प्रमाण मीमांसा की आवश्यकता अत्यधिक महत्व की दृष्टिगोचर होती है। सभी दार्शनिकों ने तत्वसिद्धि के लिए प्रमाणों को ही स्वीकार किया है। इसलिए ज्ञानमीमांसा का अपना एक विशेष स्थान है। उसके विना दर्शनशास्त्रपंगु और अन्धा ही होकर एक पत्थर की भांति जड़ और निष्क्रिय बनकर रहेगा।

अत: कहा जा सकता है कि दर्शनशास्त्रमें ज्ञानमीमांसा प्रमाणमीमांसा का स्थान सर्वोपरि है। उसके विना दर्शनशास्त्रकी गति और दृष्टि भी अवरुद्ध हो जाती है।

ज्ञानमीमांसा

ज्ञान का प्रधान सम्बन्ध आत्मा से है। कृष्ण अर्जुन को देह की नश्वरता[2] और आत्म की अमरता[3] का उपदेश देकर उसे आत्मज्ञानी बनाते हैं क्योंकि जब तक मनुष्य को अपना ज्ञान नहीं होगा, मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? क्या हूँ? क्या करने आया हूँ? तथा क्षेत्रक्या है? क्षेत्राज्ञ क्या है? ज्ञेय क्या है? तब तक वह अपने ध्येय में प्रवृत्त नहीं हो सकता। अर्जुन अपने ध्येय को भूल रहा था, कृष्ण उसे कर्म-ज्ञान व भक्ति की त्रिवेणी द्वारा अपने लक्ष्य में नियोजित करने का अथक प्रयास करते हैं। वस्तुत: शुद्ध सात्विक ज्ञान के उदय होने पर ही आत्मा शाश्वतिक सुख प्राप्त कर सकता है।

जब तक सात्विक ज्ञान का उदय नहीं होगा तब तक अनेक मलिन कर्मों से दबा हुआ आत्मा मुक्त नहीं होता। इसीलिए श्रुतियों में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि - ''बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती।''[4] जितने भी साधन हैं, कर्म-भक्ति व योग आदि उनसे अन्ततोगत्वा ज्ञान का ही उदय होता है। अष्टांग योग में भी कहा गया है कि - ''योग के अंगों का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश होता है, विवेक ख्याति तक।''[5] वस्तुत: सत्कर्मों का पवित्रअनुष्ठान अन्त:करण और इन्द्रियों में पवित्राता लाता है जिससे सात्विक ज्ञान का उदय होता है। गीता में कहा कि - ''इस ज्ञान का आश्रय लेकर मेरे साधर्म्य; सायुज्यद्ध में आ पहुँचे हैं वे सृष्टि की उत्पत्ति का समय आने पर भी जन्म नहीं लेते, सृष्टि का प्रलय होने पर भी दु:खी नहीं होते।''[6] अर्थात् वह ज्ञान सत्व, रज, तम इन तीन गुणों के लक्षण भेद स्वरूप और पुरुष की त्रिगुणातीत अवस्था है, ऐसी अवस्था को प्राप्त होने वाले पुरुष आवागमन रहित हो जाते हैं वे परमात्मा का साधर्म्य पा जाते हैं।

इस प्रकार ज्ञानयोग की जो साधना का मार्ग है वह अभेदवाद है। इसलिए इसे अभेद भक्ति भी कह देते हैं। इसमें साधक विचार का आश्रय लेता है और विचार से अपने आपको परमात्मा से अभिन्न निश्चय करता है। ज्ञान की नीरसता को भक्ति की सुरसरि जब अपना रस इसमें घोल देती है तो यह ज्ञान केवल ज्ञान न रहकर ज्ञान योग बन जाता है।

ज्ञान का महत्व प्रतिपादित करते हुए गीता में कहा कि - 'निश्चय से ज्ञान के सदृश पवित्रऔर कोई वस्तु इस जगत् में नहीं है। इसको योगसिद्ध पुरुष आप ही समय पाकर अपने आत्मा में पा लेता है।[7] अत: ज्ञान का प्रधान सम्बन्ध आत्मा से ही है।'

ज्ञानोपलब्धि

ज्ञान की उपलब्धि या ज्ञान का प्राप्त करना कोई खेल नहीं है कि दो पुस्तक पढ़ी ज्ञानी हो गये, किन्तु ज्ञान प्राप्त के लिए पहले शिष्य बनना, विनयी बनना और श्रद्धावान् बनना पड़ता है। जिसको अपने गुरु पर श्रद्धा ही नहीं है। परमात्मा के प्रति श्रद्धा नहीं हैं वह श्रद्धावान् कैसे बनेगा। श्रद्धावान् पुरुष ही ज्ञानवान् बनता है। वह अपनी इन्द्रियों को वश में कर, आत्मकेन्द्रित हो ज्ञान के समुद्र में डुबकी लगाता है।[8]

वह ज्ञानी संशय रहित, श्रद्धायुक्त होता है। वह ज्ञान में निष्ठा प्राप्त कर सब संशयों से परे होकर लोक और परलोक दोनों में प्रतिष्ठा पाता है, पर जो अज्ञान में डूबा है, संशय वाला है, उसके लिए तो न लोक है न परलोक है। वह श्रद्धाहीन, संशयग्रस्त नाश को ही प्राप्त होता है।[9]

इसलिए कृष्ण कहते हैं श्रद्धवान् बनकर, संशय रहित होकर आत्मज्ञानी बनो। आत्मज्ञानी को कर्म नहीं बांधते।[10] जो तुम्हारे अन्दर यह अज्ञान से उत्पन्न हुआ संशय घुस गया है कि ये मेरे सगे सम्बन्धी हैं, इनको मारूंगा तो यह हो जायेगा, वह हो जायेगा, इन सब संशयों को ज्ञान की तलवार से काट कर योग का सहारा लो। ''योग: कर्मसु कौशलम्'' इस प्रकार ज्ञानी बनो, संशय रहित होकर युद्ध करो।[11] क्योंकि जितने कर्म हैं वे सब ज्ञान में ही समाप्त होते हैं[12] और जो प्रश्नकर्ता है वह प्रणत है, सेवा भावी है, गुरुभक्त है तो वह गुरु से तत्व ज्ञान का उपदेश प्राप्त कर लेता है।[13]

इसमें कोई सन्देह नहीं। अत: चित्त का सर्वथा आत्मिक उत्थान में नियोजित किये रहना ज्ञान योग कहलाता है। इससे सभी प्रकार की आत्मकल्याण सम्बन्धी सिद्धियां प्राप्त होती हैं। ज्ञानयोग का साधक सपफलता तभी प्राप्त कर सकता है, जब वह अपने मन को वश में कर ले। आत्मकेन्द्रित कर ले। इसलिए उपनिषद् भी कहती है कि जो श्रेष्ठ योगी ज्ञानयोग की साधना में मनोयोग पूर्वक संलग्न रहता है, वह कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता।[14] कर्मयोग में कर्म की प्रवृत्ति है दूसरे में तत्वज्ञान की। ज्ञानयोग में कर्मकाण्ड आदि का विधान नहीं होता। ज्ञानयोग का मुख्य आधार तत्व के अन्वेषण से है। गीता सांख्य को भी ज्ञान योग या संन्यस्त योग कहती है। सांख्य में 24 तत्व बताये गये हैं अत: साधक तत्वों का आश्रय ले, इनका चिन्तन कर प्रकृति और पुरुष के भेद को (विवेक ज्ञान

से) समझते हुए मोक्ष प्राप्त करता है। किन्तु गीता व योग दर्शन के अनुसर एक (पुरुष विशेष) ईश्वर को भी स्वीकारती है। नहीं तो परमतत्व की प्राप्ति प्रणिधान कहाँ से हो।

अत: इसके लिए शरीर नहीं अपितु मन तथा बुद्धि से कर्म किये जाते हैं। यदि मन और बुद्धि परमेश्वर के विचार में मग्न रहें तो स्वाभाविक है इन्द्रियाँ भी उनकी सेवा में प्रस्तुत रहेंगी क्योंकि ज्ञानी को तो कभी नहीं बांधते। मन, इन्द्रियाँ और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्तापन का त्याग यही ज्ञानयोग है।[15] क्योंकि जिसके सारे उद्योग फल की इच्छा से रहित होते हैं, बुद्धिमान् लोग उस ज्ञान की अग्नि से कर्मो को जला देने वाले पुरुष को पण्डित कहते हैं।[16] इसीलिए उपर जो कहा कि ज्ञान के समान पवित्र करने वाला नि:सन्देह कुछ भी नहीं हैं। उसीसे शान्ति प्राप्त होती है। गीता में कहा कि तत्व को जानने वाला (ज्ञानयोगी) देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, सब इन्द्रियाँ अपने में बरत रही हैं यह समझता हुआ, नि:सन्देह ऐसे माने कि मैं कुछ नहीं करता हूँ। अर्थात् वश में है अन्त:करण जिसके ऐसा ज्ञानयोगी पुरुष करता हुआ, न करवाता हुआ नवद्वारों वाले इस देह नगर में सुख से निवास करता है।[17] वस्तुत: जिनके अन्त:करण का अज्ञान आत्मज्ञान द्वारा नाश हो जाता है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्द परमात्मा को प्रकाशता है अर्थात् यथार्थ तत्व को प्रकाशित कर देता है।[18] क्योंकि अज्ञान के कारण ही आत्मा और परमात्मा के विषय में मनुष्य भ्रमित रहता है। इसलिए ज्ञान रूपी तलवार से जिसने सभी संशयों या भ्रमों का छेदन कर दिया गीता के अनुसार ऐसे ज्ञानयोगी के लक्षण क्या हैं? इस पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है।

गीता में ज्ञान योगी के लिए कहा कि वह आत्मसंयमी होता है, अभिमान से रहित, दम्भी, छली, कपटी नहीं होता। अहिंसा, क्षमा, सरलता आचार्य की सेवा तथा मन की शुद्धता व स्थिरता उसके गुण हैं।[19]

वह इन्द्रियों के विषयों में वैराग्वान् अहंकारशून्य, संसार में जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था व राग और सुख-दु:ख इन दोषों को देखकर कार्य करता है।[20] ज्ञानयोगी अनासक्त होता है, पुत्रा-पुत्री, गृह आदि के साथ वह मोह नहीं रखता, अभीष्ट व अनभीष्ट तथा प्रिय-अप्रिय में सदा समान चित्त रहता है। उसका उपरोक्त सभी में समभाव रहता है।[21] वह योगी ईश्वर में अनन्यभाव से भक्ति रखता है। वह प्रभु का एकनिष्ठ भक्त होता है, उसे एकान्त में वास प्रिय होता है, भीड़-भाड़ में वह अरुचि रखता है।[22] ऐसा ज्ञान योगी एकान्त वास करते हुए, आत्मनिष्ठ हो, आत्मा के ज्ञान में ही मग्न हो, तत्वज्ञान में ही रमा रहता है, उसका प्रयोजन तत्वज्ञान ही होता है। यह तत्व को जानना ही 'ज्ञान' है। इससे विपरीत 'अज्ञान' है।[23] कहा भी है -

(Endnotes)

1. यस्याकरणत: पुंसां प्रत्यवाय समुद्भव:।
   नित्यं कर्मेति तत्प्रोक्तं तत्सन्ध्यावन्दनादिकम्।।
2. श्रोतव्य: श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्रोपपत्तिभि:।
   ज्ञात्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतव:।।1।।
   तत्रतावन्मुनिश्रेष्ठ: श्रवणं नाम केवलम्।
   उपक्रमादिभिर्लिङ्गै: शक्तितात्पर्यनिर्णय:।।2।।
   सर्ववेदान्तवाक्यानामाचार्यमुखत: प्रियात्।
   वाक्यानुग्राहकन्यायशीलनं मननं भवेत्।।3।।
   निदिध्यासनमैकाग्र्यं श्रवणे मननेऽपि च।
   निदिध्यासनसंज्ञं च मननं च द्वयं बुधा:।।4।। विवरण प्रमेय संग्रह में संगृहीत।
3. अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता: शरीरिण:। गीता 2/18
4. न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाऽयं भूत्वा भविता वा न भूय:।
   अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। गीता 2/28
5. ऋते ज्ञानान्नमुक्ति:.
6. भोगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक ख्याते:।। पा.यो.द। 2/28
7. इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागता:।
   सोऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।। गीता 14/2
8. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
   तत्स्वयं योगसंसिद्ध: कालेनात्मनि विन्दति।। गीता 4/38
9. श्रद्धावाँखभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:।
   ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। गीता 4/39
10. अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
    नाऽयं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मन:।। गीता 4/40
11. योगसंन्यस्तकर्माणां ज्ञान संछिन्न संशयम्।
    आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।। गीता 4/41

12. तस्मात् ज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।। गीता 4/42
13. सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। गीता 4/33
14. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। गीता 4/34
15. योगं ज्ञानपरोनित्यं स योगी न प्रणश्यति।। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 2/20 उत्तरार्ध
16. योग संन्यस्त कर्माणं ज्ञान संछिन्न संशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।। गीता 4/41
17. यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।। गीता 4/19
18. पश्यंशृण्वन्स्पृशन्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपंश्वसन्।। गीता 5/18
प्रलपन्विसृजन्गृीन्नुन्मिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।। गीता 5/9
सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्त सुखी वसेत्।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।। गीता 5/12
19. ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति ततः परम्।। गीता 5/16
20. अमानित्वमदाम्भित्वहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।। गीता 13/7
21. इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।। गीता 13/8
22. असक्तिरनभिश्वंगः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।। गीता 13/9
23. मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।। गीत 13/10
24. अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। गीता 13/11

दृष्टिकोण DRISHTIKON

India's Leading Multidisciplinary Referred Hindi Language Journal

UGC CARE LISTED

Certificate Of Publication

This is to certify that Mr./Ms. उमेश कुमार (शोधछात्र, योग विभाग हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड)
डॉ० अरुण कुमार सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड), in recognition of Publication of the Paper entitled दर्शन शास्त्र के स्तम्भत्रय (ज्ञानयोग तथा ज्ञानोपलब्धि के विशेष सन्दर्भ में)

Published in Drishtikon Journal
Vol. 12 Issues 6 in नवम्बर दिसम्बर 2020

DRISHTIKON PRAKASHAN

Impact Factor 5.051 ISSN 0975-119X

Editor

योग के संदर्भित ग्रन्थों में ज्ञानयोग विवेचना

एवं

कैवल्य में उपयोगिता

उमेश कुमार

शोधच्छात्र, योग विभाग

हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय,

उत्तराखण्ड

डा. अरुण कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर

हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय

उत्तराखण्ड

भारतीय चिन्तन परम्परा में योग शब्द के विभिन्न अर्थ दिग्दर्शित होते हैं। योग शब्द का सामान्य अर्थ जोड़ना या मिलान करना है। व्याकरण शास्त्र में पठित 'यज् समाधौ'[1] धातु से तथा 'युजिर् योगे'[2] धातु से योग शब्द निष्पन्न होता है। सामान्यतया जिस क्रिया द्वारा किसी व्यक्ति, जीव, वस्तु पदार्थ को दूसरे जीव, वस्तु, पदार्थ आदि से जोड़ा जाता है उस क्रिया को योग कहते हैं। संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश के अनुसार योग शब्द का अर्थ चित्तवृत्ति निरोध, मनः स्थैर्य, दर्शन शास्त्र विशेष मोक्षोपाय, युक्ति-युक्त संयोग, शुभ मंगल, अवसर मुहूर्त, वशीकरणोपाय ध्यान एवं चिन्तन किया गया है।[3]

हिन्दी शब्दकोश में योग का अर्थ कुछ पृथक् परिलक्षित होता है। इस कोश में मेल-मिलाप सम्बन्ध सूत्र, परिणाम कौशल उपाय, तरकीब, ध्यान, छल, लाभ, शुभावसर, फलित ज्योतिष में तिथिवार नक्षत्रादि स्थिति विशेष दिया गया है।[4]

यहां यह ध्यातव्य है कि जहाँ योगदर्शनशास्त्रकार ध्यान योग को अष्टाङ्गयोग परम्पराम में योग का सप्तम अङ्ग स्वीकार करते हैं वहीं वामन शिवराम आप्टे, तथा हिन्दी अकादमी अमीनाबाद से प्रकाशित हिन्दी शब्दकोश में योग शब्द का एक स्वतन्त्र अर्थ ध्यान बताया है। यौगिक ग्रन्थों में वर्णित योग के विभिन्न अर्थों का तात्पर्य एक ही है कि अध्यात्म क्षेत्र में जीवात्मा तथा परमात्मा का मिलन तथा मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के एकीकरण का नाम योग है।

प्रान्तीय प्रदेशों को संतृप्त करती हुई नदियां जिस प्रकार समुद्र में विलीन हो जाती हैं तथैव योग के विभिन्न मार्ग होते हुए भी सभी मार्ग अन्त में कैवल्य को ही प्राप्त होते हैं। अधुनातन कालीन परम्पराओं में योग के विभिन्न मत हैं तथा विभिन्न प्रकार की साधनाएँ भी दिग्दर्शित होती हैं, परन्तु उपनिषदकारों का मत है कि मुख्यरूप से ज्ञानयोग एवं कर्मयोग दो ही मत हैं।[5] योगतत्त्वोपनिषदकार मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग को स्वीकार करता है।[6] अन्य अनेक ग्रन्थों ने भी योगतत्त्वोपनिषदकार को स्वीकार किया है।[7]

श्रीमद्भगवद्गीता में दो प्रकार के पुरुष मान जाते हैं जो आत्मसाक्षात्कार का प्रयास करते हैं। इसी को कुछ ज्ञानयोग मानते हैं तथा कुछ इसे कर्मयोग कहते हैं-

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।

ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।[8]

श्रीमद्भगवद्गोता में सांख्य के द्वारा ज्ञानयोग का वर्णन किया गया है। गीता कहती है कि निष्काम भावना से यदि तुम ज्ञानपूर्वक कर्म करोगे तो कर्मबन्धन से मुक्त हो जाओगे -

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।

बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।[9]

ज्ञानयोग त्रिगुणात्मिका प्रकृति और उससे उद्भूत समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थों के साथ-साथ आत्मा तथा परमात्मा का ज्ञान जिस विधि से होता है वह विधि ज्ञानयोग कहलाती है। स्थूलरूपेण ज्ञानयोग दो भेदों में विभक्त है। चार बहिरंग तथा चार अन्तरङ्ग। बहिरंग भेद में साधन चतुष्ट्य तथा अन्तरङ्ग साधन के अन्तर्गत श्रवण, मनन, निदिध्यासन व साक्षात्कार है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं -

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।[10]

अर्थात् हे पार्थ! द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। हे परन्तप! अन्ततोगत्वा सारे कर्मो तथा यज्ञों का अवसान दिव्यज्ञान में होता है। आत्मा तथा परमात्मा सम्बन्धी पूर्णज्ञान तथा उनके सम्बन्ध की तुलना अग्नि से की गई है। यह ज्ञानाग्नि अखिल कर्म फल को भस्म कर देने वाली है।[11] बृहदारण्यक का ऋषि कहता है कि ज्ञानयज्ञ करने वाले व्यक्ति को शुभाशुभ कर्मो का फल संतप्त नहीं करता।[12] पुनः गीता में श्री कृष्ण कहते हैं - 'समस्त संसार में ज्ञान के समान कुछ भी उदात्त नहीं है। ज्ञान समस्त योग का परिपक्व फल है। योगीजन यथा समय स्वान्तःकरण में ज्ञानयोग का आस्वादन करता है।[13] अतः अज्ञान से उत्पन्न हृदय में स्थित ज्ञानरूप शास्त्र से आत्मा के संशय का काटकर योग में स्थित हो जाओ।[14]

सांसारिक ज्ञान और विज्ञान ज्ञानयोग नहीं है, अपितु गुणत्रय तथा गुणत्रय से निष्पन्न अखिल पदार्थों से पृथक् अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर तथा स्थूल सूक्ष्म और कारण जगत् अथवा पञ्चकोश से परे गुणातीत शुद्ध परमात्मतत्त्व को जिसके द्वारा इन सबके ज्ञान नियम और व्यवस्थापूर्वक क्रिया हो रही है, संशय विपर्यय रहित पूर्णरूपेण जान लेना ज्ञानयोग है।

मुमुक्षु जनों के लिए योगतत्त्वोपनिषदकार कहता है कि – ज्ञानहीन योग मोक्ष कर्म में सहायक नहीं होता। अत एव मुमुक्षुओं का आवश्यक है कि ज्ञान तथा योग का दृढाभ्यासी बनें।[15]

अज्ञान से संसार का बन्धन होता है तथा ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः प्रारम्भ में ज्ञान स्वरूप उस ज्ञान को तथा ज्ञान के साधन को जानना चाहिए, जिसने स्वरूप को जान लिया वह ही कैवल्यरूप परमपद को प्राप्त होता है। जहाँ निष्फल, निर्मल, सच्चिदानन्द स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

1. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी - पृ. 428 (गुटकाकार)
2. व्याकरण सिद्धान्त कौमुदी - पृ. 445 (गुटकाकार)
3. संस्कृत हिन्दीकोश - वामन शिवराम आप्टे - पृ. 839
4. हिन्दी शब्दकोश - हिन्दी अकादमी - अमीनाबाद लखनऊ - पृ. 567
5. ज्ञानयोगः कर्मयोगः इति योगो द्विधामतः। त्रिशिशब्राह्मणोपनिषद - 22
6. योगो हि बहुधा ब्रह्मन् विद्यते व्यवहारतः।
   मन्त्रयोगोलयश्चैव हठाऽसौ रोजयोगकः।। योगतत्त्वोपनिषद् - 19
7. शिवसंहिता - 5/14, योगशिखोपनिषद् - 1/129
8. गीता 3/9
9. गीता - 2/39
10. गीता 4/33
11. गीता 4/37
12. बृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/22
13. गीता 4/38
14. गीता 4/49
15. योगतत्त्वोपनिषद् - 14, 15

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. अमरसिंह	अमरकोष, सम्पा. वामनाचार्य झलकीकर, प्रका. ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, संस्क. प्रथम, 2002.
2. आप्टे, वामनशिवराम	संस्कृत हिन्दी कोश, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2006.
3. आप्टे. वामनशिवराम	द प्रैक्टिकल संस्कृत इग्लिश डिक्शनरी, दिल्ली, 1963.
4. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी	(बालमनोरमा व्याख्या सहित) श्री वासुदेव दीक्षित, सं. - श्री गोपाल दत्त पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 1995.
5. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी	श्री परमेश्वरानन्द शर्मा, प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्क. पुनर्मुद्रित, 2005.
6. ईशादि नौ उपनिषद्	शाङ्करभाष्यार्थसहित, गीताप्रेस गोरखपुर, सम्वत् 2068
7. बृहदारण्यकोपनिषद्	शाङ्करभाष्यार्थसहित, गीताप्रेस गोरखपुर, सम्वत् 2068
8. योगतत्त्वोपनिषद्	गीताप्रेस गोरखपुर

****

ADITI MAHAVIDYALAYA

(University of Delhi)

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

UGC Sponsored National Conference on

Yoga and It's Potential to Heal the Planet

28th-29th January 2020

This is to certify that Prof./Dr./Ms./Mr. Umesh Kumar .....

.....*was a participant/KeynoteSpeaker/Session Chair/paper presenter on/in*

योग के संदर्भित ग्रन्थो में ..... कैवल्य में उपयोगित .....*for this*

National Conference on Yoga and It's Potential to Heal the Planet.

Neerja Nagpal

Chief Patron	Convenor	Organising Secretary
Dr. Mamta Sharma	Mrs. Neerja Nagpal	Dr. Ritu Sharma
(Principal)		